VYAS PANCHANG

ज्योतिष-पंचांग-पूजा पाठ एवं ज्योतिष परामर्श

बालागाम,ता.केशोद,जिला.जूनागढ़,गुजरात,भारत(इन्डिया) पिन:362220

www.vyaspanchang.com, help@vyaspanchang.com, MO.NO.94087 28736 (11 AM TO 06 PM)

श्रीदुर्गा-कल्पतरु

संस्कृत-हिन्दी

VYAS PANCHANG

'कौल-कल्पतरु'
चण्डी

श्रीदुर्गा-कल्पतरु

चतुर्भुजा दुर्गा

'चण्डी' : विशेष प्रस्तुति

श्रीदुर्गा-कल्पतरु

श्रीदुर्गा के विलक्षण रूपों का परिचय

श्रीदुर्गा-तत्त्व

श्रीदुर्गा-मन्त्र-तत्त्व

श्रीदुर्गा-यन्त्र-तत्त्व

श्रीदुर्गा-आराधना-तत्त्व

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A., Bungalow Road, Opp Hansraj
College Back Gate, Delhi-110007
Ph.:- 23856391, 41530902

सम्पादक

रमादत्त शुक्ल

ऋतशील शर्मा

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक :

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎(०५३२)-२५०२७८३

।। श्री दुर्गायै नमः ।।

अनुक्रम

[१] श्रीदुर्गा-परिचय ---------- ३

(१) सुन्दर एवं स्फूर्ति-दायक 'दुर्गा'-नाम का अर्थ ३

(२) 'श्रीदुर्गा'-नाम-माहात्म्य ६

[२] भगवती दुर्गा के तीन विलक्षण स्वरूप ---------- ११

(१) चतुर्भुजी दुर्गा (जय दुर्गा) ११

(२) अष्ट-भुजी दुर्गा १७

(३) दश-भुजी दुर्गा १९

[३] भगवती दुर्गा के चार अन्य रूप ---------- २२

(१) अपराजिता दुर्गा २२

(२) 'चण्डी' २५

(३) महा-माया २९

(४) मूल प्रकृति-रूपा दुर्गा ३१

[४] श्रीदुर्गा-तत्त्व ---------- ३३

[५] श्रीदुर्गा-मन्त्र-तत्त्व ---------- ३६

[६] श्रीदुर्गा-यन्त्र-तत्त्व ---------- ४२

[७] श्रीदुर्गा-आराधना-तत्त्व ---------- ४५

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६

अनुदान २०-०० रु०

श्रीदुर्गा-परिचय

सुन्दर एवं स्फूर्ति-दायक 'दुर्गा'-नाम

'**दुर्गा**'-पद कितना **सुन्दर** है, कैसा **स्फूर्ति-दायक** है। इसके ज्ञान मात्र से **निखिल विश्व सुन्दर** हो जाता है। इस दो अक्षरवाले नाम का उच्चारण भर करने से हमारी **सोई शक्ति में स्फुरता** आ जाती है। हमारे अन्तस्तल में **शान्ति-भाव** स्वत: उदय हो जाता है। इसके श्रवण से हमारे **आसुरी भाव** काँप कर भागने को प्रस्तुत होने लगते हैं। इसके मनन से **समस्त असुर मृत-प्राय** हो जाते हैं। इसके निदिध्यास से **सम्पूर्ण आसुरी सर्गों का निर्मूलन** हो जाता है।

'दुर्गा'-नाम का अर्थ

१. 'द'-कार, २. 'अ'-कार, ३. रेफ, ४. 'ग'-कार और **५. 'आ'-कार**—इन ५ वर्णों के योग से मन्त्र-स्वरूप '**दुर्गा**'-नाम की निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ इस प्रकार है—

दैत्य-नाशार्थ-वचनो, दकारः परिकीर्तितः। उकारो विघ्न-नाशस्य, वाचको वेद-सम्मतः।

रेफो रोगघ्न-वचनो, गश्च पापघ्न-वाचकः। भय-शत्रुघ्न-वचनश्चाकारः परि-कीर्तितः॥

अर्थात्—दैत्यों (असुरों) के नाश के अर्थ को **द-कार** बतलाता है, **उ-कार** विघ्न का नाशक वेद-सम्मत है। **र-कार** रोग का नाशक, **ग-कार** पाप का नाशक और **आ-कार** भय तथा शत्रु का विनाशक है। इस प्रकार '**दुर्गा**'-नाम अपने अर्थ का यथार्थ बोधक है। शास्त्र-कार जहाँ-तहाँ कहते हैं—

दुर्—दुःखात् गमयति दुर्गा, दुर्—दुःखेन गम्यते दुर्गा।

दुर् दुःखानि गमयति दुर्गा, दुर् दुर्गतिं (नरकं) गमयति, दूरयति सा दुर्गा।

दुर् दुर्दशां गमयति (नाशयति) सा दुर्गा, दुर् दुराशां गमयति, दूरयति सा दुर्गा।

दुर् दुरितानि पापानि गमयति, विनाशयति सा दुर्गा।

दुर् दुराचारं दोषं वा गमयति, दूरं करोति सा दुर्गा॥

'**दुर्गा**'-शब्द का दूसरा रूप '**दूर्गा**' भी है। '**दुर्गा**'-पद में **ह्रस्व उ-कार** है, परन्तु कहीं-कहीं **दीर्घ ऊ-कार** का भी उल्लेख है। इससे '**दुर्गा**'-नाम का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। 'विश्वसार तन्त्र' कहता है—'**थान्त-वीजं समुद्धृत्य, वाम-कर्ण (ऊ) विभूषितम्।**'

'वरदा तन्त्र' भी इसी मत का समर्थन करता है—'**दं दुर्गा-वाचकं देवि! ऊ-कारो रक्षणार्थकः।**'

'ब्रह्म-सूत्र' का प्राणाधिकरण 'शक्ति-भाष्य' भी यही कहता है—

'**दू-नाम्नी देवता च जगद्धात्री दुर्गा तद्-वीज-वर्णात्।**'

अतः '**दुर्गा**'-पद से **पाप-क्षय-कारिणी, मृत्यु को दूर भगानेवाली, भय तथा शत्रु का नाश करनेवाली** का बोध होता है। दूसरे शब्दों में इससे उस परम सत्ता का बोध होता है, जो वागादि इन्द्रियों के पापों को दूर कर मृत्यु को दूर भगाती है। पापों को इस प्रकार हटाती है कि जीव से अच्छे कर्म करवाती है, जिससे यम का डर नहीं रहता। इसीलिए शास्त्रों में ऐसी फल-श्रुति लिखी है—

प्रभाते यः स्मरेन्नित्यं, दुर्गा-दुर्गाक्षर-द्वयम्। आपदस्तस्य नश्यन्ति, तमः सूर्योदये यथा॥

अर्थात् प्रभात-काल (प्राण-शक्ति की सम्वर्धित स्थिति) में जो नित्य '**दुर्गा**'-'**दुर्गा**' इस अनाशवान् वर्ण-द्वय का स्मरण करते हैं, उनकी आपदाएँ इस प्रकार नष्ट होती हैं, जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अन्धकार का नाश होता है। और अधिक स्पष्ट रूप में कह सकते हैं कि जिस प्रकार सूर्य की प्रकाश-शक्ति अन्धकार को भगाती है, उसी प्रकार '**दुर्गा**'—सर्व-व्यापिका महा-शक्ति की धारणा से समस्त आपदाएँ—अविद्या के सहकारी आसुरी सर्ग दूर हो जाते हैं।

'दुर्गा'—दुर्ग्रह अर्थात् कठिनता से ग्रहण की जानेवाली

'**दुर्गा**' (दुर् + ग गमने, ज्ञाने + टाप्)-पद से '**दुर्ग्रह**' अर्थात् कठिनता से ग्रहण की जानेवाली सत्ता का भी बोध होता है। 'योग-वासिष्ठ', निर्वाण-प्रकरण, उत्तरार्ध ८४।११—'**दुर्गा दुर्ग्रह-रूपतः।**'

'अथर्वशीर्ष-देव्युपनिषत्'-श्रुति भी '**दुर्गा**' को '**दुर्गमा**' कहती है—'**तां दुर्गां दुर्गमां देवीम्।**'

'देव्युपनिषत्'-श्रुति में इसकी लक्षणाओं का उल्लेख इस प्रकार है—'जिसका स्वरूप ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते, इस कारण '**अज्ञेया**' है। अन्त नहीं मिलने से '**अनन्ता**' कहलाती है। लक्ष्य नहीं दिखने से '**अलक्ष्या**' है। जन्म नहीं लेती, इससे '**अजा**' है। सर्वत्र अकेले रहने से '**एका**' कहलाती है। विश्व-रूपिणी होने से '**अनेका**' कही जाती है। पुनः **दुर्गा भगवती** के सम्बन्ध में यही 'देव्युपनिषत्' कहता है—'सब मन्त्रों में **मातृका देवी** है, सर्व-मातृका-वर्णों की अधिष्ठात्री **प्रकाश-शक्ति-स्वरूपा** है। शब्दों की **ज्ञान-स्वरूपा, अर्थ-स्वरूपिणी** है। अर्थों के ज्ञान की **परा स्वरूपा** है, ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय की त्रिपुटी से भी परे है। **शून्यों का भी शून्य, प्राणों की भी प्राण-रूपिणी** है।'

'दुर्गा'—महा-चिति, महा-चेतना, सर्व-व्यापिका, सर्व-प्रकाशिका

इस प्रकार '**दुर्गा**'-पद से **महा-चिति** अर्थात् **महा-चेतना शक्ति** का बोध होता है। यही **सर्व-व्यापिका, सर्व-प्रकाशिका महा-शक्ति** है। यही **महा-माया** है, इसी ने सारे संसार को अपने में बसा रखा है। यही **२५** और **३६ तत्त्वों की राजधानी** है। **ब्रह्म, परमात्मा, पुरुष, महेश्वर**, किसी भी नाम से कहिए सभी की विकास-सीमा इसी के भीतर है। सभी इससे प्रकाशित हैं। सब कुछ इसके किए से ही होता है।

'**ब्रह्म**' साक्षात् नहीं होता है और होता है, तो सर्व-प्रथम इसी रूप में होता है। इसलिए यही '**ब्रह्म**' है, यही '**शक्ति**' है, यही '**माया**' है, यही '**प्रकृति**' है। यही भगवती की '**दश महा-विद्याओं**' की और भगवान् के '**दश तथा २४ अवतारों की मूल भूमिका**' है। संसार का कोई काम, कोई चिह्न, कोई विचार, कोई सङ्केत या जल, स्थल, आकाश, पाताल—कहीं कोई सत्ता ऐसी नहीं है, जो इससे

रहित हो। यही संसारार्णव से पार करती है। यही परमात्मा है। यही शरीर में चेतना है। इसी से '**ब्रह्म**'—**चैतन्य** है। यह उस '**ब्रह्म पर-तत्त्व**' में विलास करती है। इसकी स्फुरणा से ही '**ब्रह्म**' को प्रकाश मिलता है। **भगवान् श्रीकृष्ण (परमात्मा)** स्वयं **अर्जुन** को समझाते हैं कि—'**नाहं प्रकाशः सर्वस्य, योग-माया समावृतः।**' अर्थात् मैं सभी के प्रकाश में नहीं आता हूँ क्योंकि **योग-माया** से ढँका हुआ हूँ। **योग-माया** मुझे ढाँपे रहती है। यह **योग-माया**, जो **ब्रह्म** को ढाँपकर विलास करती है, श्री '**दुर्गा**' है। **भगवती श्री दुर्गा** ने स्वयं श्री-मुख से **हिमालय** को सम्बोधित करते हुए, सभी देवों को, जो उस समय उपासना के लिए आए थे, समझाया है कि—"मैं दो भागवाली हूँ। मेरा एक भाग '**पर**' और दूसरा '**अपर**' कहलाता है। '**पर**'-भाग—**निर्गुण ब्रह्म, शुद्ध सम्वित्** है और '**अपर**'-भाग—**सगुण ब्रह्म** है। देखिए 'देवी भागवत', सप्तम स्कन्ध—'**भाग-द्वयवती यस्मात्, सृजामि सकल्पं जगत्।**'

भोग-मोक्ष-दात्री सर्वाराध्या 'श्रीदुर्गा'

उपर्युक्त अर्थ व भावार्थ से स्पष्ट है कि **श्रीदुर्गा** ही '**ब्रह्म-शक्ति आदि-माया**' है। **भगवती दुर्गा** का **नाम, ध्यान, यन्त्र, मन्त्र**—सब इसी तथ्य के प्रमाण हैं। देखिए आगे प्रस्तुत **श्रीदुर्गा-मन्त्र-तत्त्व, श्रीदुर्गा-यन्त्र-तत्त्व।** सभी से स्पष्ट होता है कि '**दुर्गा**' ही '**ब्रह्म**' की प्रतिपाद्य देवता है। यही **भोग** और **मोक्ष** का कारण है।

ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन, सौभाग्यारोग्य-सम्पदः। शत्रु-हानिः परो मोक्षः, स्तूयते सा न किं जनैः॥

अर्थात्—जिसके प्रसाद (कृपा) से ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य, सम्पदाएँ, विजय और मोक्ष तक मिलता है, उस सर्वाराध्या भगवती दुर्गा की आराधना कौन नहीं करता? सभी करते हैं।

'**देवी भागवत**' में लिखा है कि जो **दुर्गा की आराधना** करता है (पूजता है, स्मरण करता है), वह सभी प्रकार की सिद्धियाँ पाता है और उसके आगे कोई विपद् नहीं आती। यह **बुद्धि-तत्त्व की अधिष्ठात्री** है और यही **अन्तर्यामि-स्वरूपिणी** है। '**दुर्गा**'—सभी के द्वारा सेव्य है। इसे कौन पूजते-ध्याते हैं, देखिए 'देवी भागवत', ९वाँ स्कन्ध—'**दुर्गा भगवती को ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव और मनुष्य, ज्ञान-निष्ठ मुनि लोग, योगी तथा आश्रमी गृहस्थादि, लक्ष्मी आदि देवियाँ सभी ध्याते-पूजते हैं।**'

श्रीदुर्गा मन्त्र (नवार्ण मन्त्र) के **ऋषि** तीनों देव—**ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव** हैं। ऋषि वही होगा, जिसने मन्त्र को सिद्ध कर प्रचार किया। वे ही **भगवती दुर्गा के प्रथम उपासक** हैं। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि **दुर्गा भगवती** ही **मोक्ष-दायिनी** है, और कोई देव मोक्ष नहीं देते, अतएव 'सप्तशती' के प्रथम अध्याय में ऋषि कहते हैं—'**सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु-भूता सनातनी।**'

'शक्रादि'-स्तव, सप्तशती में तो सभी देवों ने एक स्वर से **दुर्गा भगवती** को **विद्या मुक्ति-स्वरूपा** कहा है। **मुक्ति का साधन** भी कहा है। **मोक्षार्थियों की उपास्या** भी बतलाई है—'हे देवि! आप अचिन्त्य महा-व्रत साधन करनेवालों, नियत इन्द्रिय वर्गवालों और ब्रह्म-सार समझनेवालों (ब्रह्म-वेत्ताओं) से उपासित होती हैं। जिनके समस्त दोष शान्त हो गए हैं और जो मोक्ष चाहते हैं, उन

मुनियों से तुम उपासित होती हो। कारण तुम ही **परमा विद्या** हो।

'ब्रह्म-वैवर्त पुराण' में **भगवान् श्रीकृष्ण** स्वयं **भगवती दुर्गा** के विषय में कहते हैं—

त्वमेव सर्व-जननी, मूल - प्रकृतिरीश्वरी। त्वमेवाद्या सृष्टि-विधौ, स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।।
कार्यार्थे सगुणा त्वां च, वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्। पर-ब्रह्म-स्वरूपा त्वं, नित्यानित्य-स्वरूपिणी।।

स्पष्ट है कि **भगवती दुर्गा** आदि माया है, वह सर्व-कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्था है। यही **ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि देवों** को भी स्वेच्छा से कर्मों में प्रवृत्त करती है। यही इन समस्त देवादि की **आदि जननी** है। यही **मोक्ष-दायिनी** है। **भगवती दुर्गा** की उपासना **सर्व-समर्थ उपासना** है। वैदिक सनातन मार्ग है। इसकी आराधना **मानव मात्र का परम कर्त्तव्य** है तथा **मुक्ति-प्राप्ति का लक्ष्य** है।

'श्रीदुर्गा'-नाम-माहात्म्य

'चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ, कलि विशेष नहिं आन उपाऊ। (मानस)

सन्त तुलसी की उपर्युक्त वाणी देव-वाक्य से तनिक भी कम पूज्य नहीं है। यथार्थ में इस कराल कलि में जीवों के उद्धार के लिए कोई अन्य चारा नहीं है। इस कराल कलि-काल की बात ही क्या, अन्य युगों में भी अनेक साधकों ने केवल **नाम-साधना** से जीवन्मुक्ति और सर्वैश्वर्य की सिद्धि प्राप्त की, इसका स्पष्ट उल्लेख अनेक पुराणों और इतिहास ग्रन्थों में भरा है। 'श्रीमद्-भागवत' का यह वचन तो सबको विदित ही है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुस्त्रेतायां यजतो मखैः, द्वापरे परि-चर्य्यायां कलौ तन्नाम-कीर्तनात्।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने 'मानस' में इसका पूर्ण समर्थन किया है—

ध्यानु प्रथम जुग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषण प्रभु पूजे।।
कलि केवल मलि मूल मलीना। पाप-पयोनिधि जन मन मीना।।
नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जंजाला।।

'नाम' की महिमा नामी की महिमा से तनिक भी कम नहीं है, अपितु उससे कहीं बढ़कर है। इस दशा में **नाम का माहात्म्य** हम लोगों के मुँह से तो 'छोटा मुँह बड़ी बात' वाली कहावत चरितार्थ होगी। **'नाम-महिमा'** को गाते हुए सन्त तुलसी ने कहा है—

नाम रूप दुई ईस उपाधी, अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।
को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुन-भेद समुझहहि साधू।।
देखहहिं रूप नाम आधीना, रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना।।
नाम रूप गति अकथ कहानी, समुझत सुखद न परति बखानी।।
अगुन सगुन बिच नाम सुखाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी।।

यथार्थ में **'नाम-साधना'** ही वह साधना है, जहाँ **निर्गुणोपासक** तथा **सगुणोपासक** एक भूमि पर स्थित होते हैं। **पातञ्जलि योग-सूत्र** में भी, जहाँ पर **ईश्वर** को **ॐ-स्वरूप** बताया गया है, वहीं पर उसके वाचक **प्रणव ॐ** के जप का विधान भी है। साक्षात् **वेद भगवान्** ने भी **'नाम-जप'** पर पूर्ण ज़ोर दिया है। देखिए 'यजुर्वेद', ४०वाँ अध्याय—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्। ॐ कृतो स्मर कृतं स्मर ॐ कृतो स्मर कृतं स्मर॥

अर्थात्—हे जीवों! इस भौतिक शरीर में केवल प्राण देवता ही अमृत-स्वरूप है, भौतिक शरीर का अन्तिम रूप तो केवल क्षार-ही-क्षार है। इसलिए हे जीवों, तुम इस तत्त्व को सदा समझते हुए प्रणव का स्मरण करते रहो और अपने किए हुए कर्मों का स्मरण रखो।

सगुणोपासक पुराणों ने भी **प्रणव** की अनेक व्याख्याएँ की हैं। एक उद्धरण यहाँ पर देना अनुचित नहीं होगा, देखिए (देवी भागवत, स्कन्ध ५, अध्याय १, २२, २३)—

अकारो भगवान् ब्रह्माऽप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम्।
मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्ध-मात्रा महेश्वरी।
उत्तरोत्तर-भावेनाऽप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः॥

प्रणव-स्थिता अर्ध-मात्रा-रूपा भवानी दुर्गा के नाम की क्या महिमा है, यहाँ यही हमारा विवेच्य विषय है। वैयाकरणों की दृष्टि में शब्द-मात्र ही **'ब्रह्म'**-वाचक है। एक शब्द का भी सम्यक् सु-प्रयोग निःश्रेयस प्रदान करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम किसी भी शब्द को उससे सम्बन्धित कर सीधे उसके पास पहुँच सकते हैं, किन्तु इसके लिए **अटल विश्वास** और **अमित श्रद्धा** का होना अनिवार्य है। इसलिए हमारे शास्त्रकारों ने कुछ विशिष्ट शब्दों को विशेष रूप-लीला से सम्बन्धित कर रखा है। **प्रत्येक नाम के पीछे हमारी एक विशेष धारणा** बनी हुई है। अब यहाँ यही विचारना है कि माँ के इस परम प्रिय नाम **'दुर्गा'**-शब्द के पीछे कैसी धारणा है, जिससे **राम, नारायण, कृष्ण, विष्णु, हरि, शिव, शङ्कर** आदि अनेक नाम-माला-मणियों के बीच यह **'दुर्गा'**-नाम सुमेरु के समान है। शास्त्रों ने सभी **नामों की महिमा** गाई है, जो अक्षरशः सत्य एवं यथार्थ है। इन माहात्म्यों की तुलना करने पर एक विशेष गुण की विशेषता प्रत्येक नाम के पीछे दिखाई पड़ती है। **'दुर्गा'**-नाम के महिमा-वर्णन में तद्-तद् विशेषताओं का एकीकरण तथा समष्टि-भाव ही इसकी विशेषता है।

माँ का यह नाम **परम अद्भुत** तथा **विचित्र रस को उत्पन्न करनेवाला** है। इस नाम से **माँ की सभी लीलाओं तथा सभी रूपों का द्योतन** होता है। यदि **'रमणात् रामः, व्यापनात् विष्णुः, कर्षणात् कृष्णः, शिवत्वात् शिवः'** आदि अनेक विभिन्न **नामों की महिमा**, अपनी विशेषता को लिए हुए हैं, तो **'दुर्गा'**-नाम के अन्तर्गत इन सभी गुणों का समावेश है। इसीलिए तो **माँ की महिमा** गाते हुए **जगद्-गुरु शङ्कर** ने कहा है—

नहि दुर्गा-समा पूजा, नहि दुर्गा - समो जपः।
नहि दुर्गा - समं ज्ञानं, नहि दुर्गा - समं तपः।

दुर्गायाश्चरितं यत्र, तत्र कैलाश-मन्दिरम् ॥ (मुण्डमाला तन्त्र)

अर्थात् माँ के इस नाम का जहाँ गान होता है, वहीं **शिव-कल्याण का निवास-मन्दिर कैलाश** है। फिर **शिव की स्थापना** के बाद अवशिष्ट ही क्या रहा? माँ के भिन्न-भिन्न नामों की उपासना तथा उच्चारण तद्-तद् प्रवृत्ति के सम्प्रदायानुयायियों के द्वारा होता है, किन्तु समष्टि-गुण से समवेत रहने के कारण **'दुर्गा'-नाम का जप** सभी सम्प्रदायवालों के लिए उपयोगी है। यह आज्ञा भी **भगवान् शङ्कर** की ही है (मुण्डमाला तन्त्र, तृतीय पटल)—

दुर्गा-स्मरणजं देवि! दुर्गा-स्मरणजं फलम्। दुर्गायाः स्मरणेनैव, किं न सिद्ध्यति भू-तले॥
शैवो वा वैष्णवो वापि, शाक्तो वा गिरि-नन्दिनि! भजेद् दुर्गां स्मरेद् दुर्गां, यजेद् दुर्गां शिव-प्रियाम्॥

जीव के जीवन का परम लक्ष्य—परम सात्त्विकोद्देश्य **'मोक्ष'** प्राप्त करना है। इसका सबसे सरल मार्ग **माँ के नाम की स्मृति** है। तुम्हारे नाम के जापक को **'मोक्ष'**-जैसी दुर्लभ वस्तु भी हस्तामलक है। **भगवान् शङ्कर** की उक्ति है—**दुर्गे दुर्गेति दुर्गायाः, दुर्गे - नाम परम् मनुम्।**
यो भजेत् सततं चण्डि! जीवन्मुक्तः स मानवः॥

अतएव **'दुर्गा'** जैसे प्रिय **'नाम-जप'** मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग का अवलम्बन करना विडम्बना और मूर्खता ही होगी! माँ के शरणापन्न हुए बिना तो **कैवल्य-पद** पाना बिल्कुल ही असम्भव तथा कठिन है। माँ ही तो वह शक्ति है, जिसके वश में सारा चराचर है। सभी तो उसकी आराधना करते हैं।

जब **महिषासुर** के प्रबल पराक्रम से सारा संसार अभिभूत हो रहा था और सारा देश, समाज **महिषासुर** से पराजित होकर, स्थान-भ्रष्ट होकर, अपने-अपने अधिकार खोकर विपन्न हो चुके थे। अन्य देवों की क्या गणना, **त्रि-मूर्तियों** की भी हालत बेहाल हो गई थी। उस समय **सब देवों के सम्मिलित शक्ति-पुञ्ज** का जो एकत्रीकरण हुआ, उसी से माँ, तुम **महा-लक्ष्मी**-रूप में प्रकट हुईं। **समस्त देवों की शक्ति** तुममें आ मिली और तुमने उस दैत्य का विनाश किया। इसीलिए माँ के पवित्र **'दुर्गा'**-नाम लेने पर **सभी नामों का स्मरण** हो जाता है। तुम्हारी भक्ति-पूर्वक पूजा से **सभी की पूजा** हो जाती है। सभी प्रसन्न होकर वर देने के लिए तुमसे पहले ही दौड़ पड़ते हैं।

लोक-पितामह भगवान् ब्रह्मा ने कहा भी है कि वही मनुष्य मुझे सृष्टि-कर्त्ता कहता है, जो तुम्हारे तत्त्व को ठीक-ठीक नहीं जानता है। तुम्हारे श्री-चरणों की शरण से विमुख रहकर निरर्थक **अष्टाङ्ग-योग** की चिन्ता में रहता है। माँ, तुमसे युक्त रहने पर ही मैं सृष्टि करने में समर्थ होता हूँ और **नारायण** पालन करने में तथा **शङ्कर** नाश करने में सफल और सक्षम होते हैं। **'महाकाल-संहिता'** में स्वयं **भगवान् शङ्कर** भी **'साम्राज्या-स्तव'** में कहते हैं—

"**भगवान् विष्णु** अपने भक्तों को लेकर **माँ** के सामने कर-बद्ध उपस्थित हैं और **माँ** से निवेदन करते हैं कि हे **माँ**, यह मेरा अनन्य भक्त है। इसकी वृत्तियाँ सदा मुझमें ही लगी रहती हैं। मेरा ही नाम रटता रहता है। मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ। अनेक बार मैंने इससे अनेक प्रकार के वरदान माँगने

के लिए कहा, किन्तु यह केवल **कैवल्य परम पद** को ही माँगता है, जो तुम्हारे ही हाथ में है। इसलिए कृपा करो, **माता**! इसकी साधना पूर्ण हो। **भगवान् नारायण** की सिफारिश को **माँ** बड़ी चाव से सुनती है। उनके मुख-मण्डल पर स्मित-रेखा खिंच आती है और **माँ** उस **नारायण-भक्त** को **कैवल्य** प्रदान करती है। **परम भक्त शाक्त-शिरोमणि नारायण** की सिफारिश को कैसे न सुनती? **अपने भक्त की अभीष्ट-दातृ** तुमसे बढ़ कर दूसरा कौन है? **बाबा औढर-दानी** भी तुम्हारी दी हुई **उमा-शक्ति** के संयोग से **आशुतोष** एवं **औढर-दानी** बने हुए हैं। तुमसे हीन वे स्वयं **शव** हैं। तुम्हारे संयोग से ही **शिव** हैं।''

नारायणादि की उपासना से **कैवल्य** नहीं मिलता, ऐसी बात उक्त सन्दर्भ से नहीं समझनी चाहिए। उक्त सन्दर्भ से यही समझना चाहिए कि **साक्षात् कैवल्य-दात्री एक-मात्र माँ** ही है और **नारायणादि** भी **माँ** की **कृपा** से **कैवल्य-पद** अपने भक्तों को देते हैं। इस प्रकार माँ के नाम का गौरव स्पष्ट है। माँ का '**दुर्गा**'-नाम अन्यान्य नामों में सुमेरु-मणि है। 'मुण्डमाला तन्त्र' में कहा गया है—**विष्णु-नाम-सहस्रेभ्यो, शिव-नामैकमुत्तमं। शिव-नाम-सहस्रेभ्यो, देवी-नामैकमुत्तमम्॥**

सबसे बडी बात तो यह है कि माँ, तुम्हारा '**दुर्गा**'-नाम तुम्हारे **सभी लीला-रूप स्वरूप का बोधक** है। '**दुर्गा**'-नाम लेने से **सभी महा-विद्याओं का नामोच्चारण** होता है। जिस रूप का उपासक हो, वही रूप '**दुर्गा-दुर्गा**' कहनेवालों के लिए प्रकट होता है। माँ, तुम्हारी करुणा तो प्रसिद्ध ही है। इसलिए श्रद्धा या अश्रद्धा से किसी भी प्रकार तुम्हारा नाम लेने से परम कल्याण होता है। इस प्रकार '**दुर्गा**' जैसे **परम पवित्र नाम** का माहात्म्य अनन्त है। **भगवान् शङ्कर** ने भी जितना कहा है, वह भी थोड़ा ही है। फिर भी जैसा **भगवान् शङ्कर** ने कहा है, उसका कुछ उल्लेख यहाँ किया जाता है—

- '**सर्व-विपत्ति-समुद्र-संतरण** के लिए माँ का '**दुर्गा**'-नाम नौका के समान है। भय चाहे लौकिक हो या आध्यात्मिक, **माँ का नाम** ही पार लगानेवाला है। **राज्य-कोप** में पड़ा हो या अन्य प्रकार की किसी तरह की विपत्ति हो अथवा मनुष्य **महान् दरिद्रता** के चंगुल में पड़ा हो, माँ के '**दुर्गा'-नाम** का **एक लक्ष जप** करने से **सभी प्रकार की विपत्तियों का नाश** होता है।' (मुण्ड-माला तन्त्र)।

- '**दुर्गा'-नाम** के सदृश दूसरा कोई नाम नहीं है, जिसके स्मरण करने से ही **सभी विपत्तियों का विनाश** होता है।' (पिच्छला तन्त्र, पूर्व खण्ड, तृतीय पटल)।

- **श्री भगवान् शिव** कहते हैं—'**आरोग्य, सम्पत्ति** और **ज्ञान** के परम उत्कर्ष का '**दुर्गा'-नाम** परम कारण है। कलि-युग में तो कहना ही क्या है? महा-पातकियों के भी महान्-से-महान् पाप इस नामोच्चारण से नष्ट हो जाते हैं।'

- 'रुद्र-यामल तन्त्र' में **भगवान् शिव** का **देवी** के प्रति कथन है कि—''इस '**दुर्गा**'-नाम के जप की महिमा क्या कहूँ! इसी के जप के प्रभाव से मैं '**पञ्चानन**' कहा जाता हूँ। प्रति-दिन पवित्र होकर भक्ति-पूर्वक **अष्टोत्तर-शत (१०८ बार)** जो कोई इसे जपता है, वह **धनी, पुत्रवान्, ज्ञानी** तथा **चिरञ्जीव** होता है।''

● 'हे देवि! **अष्टोत्तर-सहस्त्र (१००८ बार)** जो कोई भक्ति से प्रति-दिन इसे जपता है, उसके पुण्य फल को सुनो। धनार्थी धन, ज्ञानार्थी ज्ञान प्राप्त करता है, रोगार्त रोग से मुक्त होता है, कैदी बन्धन से मुक्त होता है, डरा हुआ भय से, पापी पाप से मुक्त होता है एवं पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है।'

'हे परमेश्वरि! **दस हजार** जो प्रति-दिन जप करते हैं, वे निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ हो जाते हैं। उसके क्रोध में मृत्यु और प्रसन्नता में परिपूर्णता होती है। इसी प्रकार सभी कर्म में वह समर्थ होता है। अभीष्ट पूर्ण करने में वह कल्प-वृक्ष के समान हो जाता है, इसे सत्य ही समझो।'

'हे देवि! प्रत्येक मास में जो **लक्ष संख्या में जप** करता है, उसे ग्रह की पीड़ा नहीं होती। न उसका ऐश्वर्य नष्ट होता है, न उसे सर्प का भय होता है। अग्नि, चोर, अरण्य, जल आदि से भी उसे भय नहीं होता। पर्वतारोहण में सिंह, व्याघ्र, भूत-प्रेत, पिशाच आदि का भय उसे नहीं होता। शत्रु-भय और दुष्ट-भय नहीं होता तथा वह **'दुर्गा'-नाम-जप-कर्त्ता** स्वर्ग-सुख का अधिकारी होता है। चन्द्र-सूर्य के समान कल्प-पर्यन्त वह द्यौ-लोक में रहता है।'

''**एक सहस्त्र वाजपेय यज्ञ** करने का फल **'दुर्गा-नाम-जप'** के प्रभाव से मिलता है। **'दुर्गा'-नाम** के सदृश इस संसार में और कोई नाम नहीं है। इसलिए प्रयत्न करके उत्तम साधकों को इस नाम का निरन्तर **'जप'** करना चाहिए। इसके स्मरण मात्र से सभी आपत्तियाँ भाग जाती हैं।''

'दुर्गा'-नाम के विषय में जो बातें ऊपर कही गई हैं, वे केवल 'अर्थ-वाद' या प्रशंसा-मात्र नहीं हैं, अपितु **सर्वथा सत्य** एवं **अनुभव से सिद्ध** हैं। पुराणों में भी **'दुर्गा-नाम'** के विषय में ऐसा ही कहा गया है। पद्म-पुराण, पुष्कर-खण्ड में लिखा है कि—

● **''मेरु पर्वत के समान महती पाप-राशि भी कात्यायनी दुर्गा भगवती की शरण में आने पर नष्ट हो जाती है। दुर्गार्चन में लगा पुरुष पाप से इस प्रकार निर्लिप्त रहता है, जिस प्रकार जल में कमल रहता है।''**

● **'दुर्गा'-नाम—सर्वथा सुलभ** और **महान् फल का देनेवाला** है। इसके जप में अन्य साधनाओं जैसी कोई कठिनता या दुरूहता नहीं है। नियमादि की भी कोई कठिनाई नहीं है, इसलिए **'दुर्गा'-नाम का सदा स्मरण** करते रहना चाहिए।

कराल कलि-काल में जब हमारी सारी आध्यात्मिक साधना के सोपान लड़खड़ा गए हैं, उस समय हम लोगों को इस सरल सोपान के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नहीं है। आज यज्ञ-वाद के लिए गुजारा नहीं है। और भी साधनाओं का मार्ग कुण्ठित है। समय और हो गया है। **कलि-काल की करालता** कराल रूप से प्रकट हो रही है। इसलिए एक-मात्र इस सरल सोपान से चलकर ही हम अपनी **आत्मिक श्रेय-साधना** कर सकते हैं। इसी मार्ग से चलकर **पारलौकिक** और **ऐहिलौकिक उन्नति** सिद्ध होगी। अत: **'दुर्गा'-नाम-महा-मन्त्र** की साधना व्यष्टि और समष्टि रूप से चारों ओर अनुष्ठित हो, सर्वत्र **'श्री दुर्गा, जय दुर्गा, जय दुर्गा'** का नाद गूँज उठे, इसके लिए हम सबको तन-मन-धन से प्रयत्न-शील होना ही चाहिए।

❋❋❋

भगवती दुर्गा के तीन विलक्षण स्वरूप

हिन्दुओं के समस्त देवताओं के हाथों में नाना प्रकार के **अस्त्र-शस्त्र** व **वराभय** आदि मुद्राएँ देखी जाती हैं। हमें अपने इष्ट-देवता की उसी के रूप के ध्यानानुगत भाव से चिन्ता करनी होती है। इष्ट-देव के कर में स्थित **आयुध** आदि हमारे पूर्व-जन्मार्जित **आसुरी वृत्तियों का विनाश** कर हमारे चित्त को दैवी-सम्पद् की ओर अग्रसर करा देते हैं।

'ध्यान' का अर्थ केवल संस्कृत के श्लोक का पाठ करना ही मात्र नहीं है। अपितु **देव-देह का सूक्ष्म परिचय** ज्ञात कर; अन्तर में उसकी प्रतिष्ठा कर; उसकी शक्ति से शक्तिमान होकर अपनी आसुरी वृत्तियों के विनाश के लिए बद्ध-परिकर होना है। **'ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय' के ऐक्य भाव का स्थिरीकरण** ही **'ध्यान'** का मुख्य उद्देश्य है।

इष्ट-देवता की दैवी शक्ति आदर्श रूप में सदैव सम्मुख विराज रही है। उसको देखते हुए सदैव उसी के ध्यान में तन्मय होना होगा। हँसते-बोलते, चलते-फिरते उसे ध्याना होगा। केवल पूजा के समय ही उसका ध्यान कर निश्चिन्त होने से काम नहीं चलेगा। नित्य अपने **इष्ट-देवता के आयुध-समन्वित आदर्श स्वरूप** को सन्मुख रखकर, स्वयं भी वैसे आयुध-धारी होकर अपनी अन्त: आसुरी प्रवृत्तियों से युद्ध करना होगा, तभी **इष्ट-देवता की शक्ति** से समर-विजयी होकर आत्मोन्नति प्राप्त होगी।

भगवती दुर्गा महा-शक्ति को **चतुर्भुजा, अष्ट-भुजा, दश-भुजा, षोडश-भुजावाली** मानकर पूजा करते हैं। उनके इन **विलक्षण स्वरूपों का रहस्य** क्या है, यह हम नहीं जानते। अन्तस्तात्पर्य को न समझने से **महा-शक्ति दुर्गा** का वह सान्निध्य प्राप्त नहीं होता, जो हमारे ऋषियों का लक्ष्य रहा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए **भगवती दुर्गा के प्रसिद्ध ध्यानों का तत्त्व-निरूपण** यहाँ संक्षेप में दिया जाता है। यथा—

१. चतुर्भुजी दुर्गा (जय दुर्गा)

'श्रीदुर्गा सप्तशती' के चतुर्थ अध्याय में **'चतुर्भुजी दुर्गा'** का ध्यान इस प्रकार है—

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुल-भयदां मौलि-बद्धेन्दु-रेखां,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रि-नेत्राम्।
सिंह-स्कन्धाधि-रूढां त्रि-भुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रि-दश-परिवृतां सेवितां सिद्ध-कामैः॥

अर्थात् काले मेघ के समान श्याम आभावाली; कटाक्षों से शत्रु-समूह को भय प्रदान करनेवाली; मस्तक पर आबद्ध चन्द्रमा की शोभायमान रेखा, हाथों में शङ्ख, चक्र, कृपाण एवं त्रिशूल

धारण करनेवाली, तीन नेत्र, सिंह के कन्धे पर सवार, तेज से तीनों लोक परिपूर्ण, देवताओं से परिवेष्ठित, सिद्धकामी जनों से सेवित **जया नामक दुर्गा** का ध्यान करे (करता हूँ)।

भगवती दुर्गा के **एकाक्षर** वा **अष्टाक्षर मन्त्र** के अनुसार **चतुर्भुजी दुर्गा का 'तन्त्रोक्त ध्यान'** इस प्रकार है—

सिंहस्था शशि - शेखरा मरकत - प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः,
शङ्खं चक्रं - धनुः शरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिश्शोभिता।
आमुक्ताङ्गद - हार-कङ्कण - रणत् काञ्ची क्वणन्नूपुरा,
दुर्गा दुर्गति - हारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

अर्थात् सिंह पर बैठी, चन्द्र (अर्ध-चन्द्र) को शिर पर धारण करनेवाली, मरकत मणि अर्थात् हरित वर्णवाली, चार भुजावाली, जिनमें शङ्ख, चक्र, धनुष और वाण हैं, त्रि-नयना, सम्बद्ध केयूर, हार, कङ्कण पहिने हुई, झनझन करनेवाली काञ्ची और नूपुर तथा रत्नों के कुण्डल को धारण किए '**दुर्गा**' हम सबकी दुर्गति-हारिणी हो।

चतुर्भुजी दुर्गा के उक्त **दोनों ध्यानों का तत्त्व-निरूपण** इस प्रकार है—

१. **सिंहासन**—आसन, अधिष्ठान का सूचक है। **अव्यक्ता परमा प्रकृति** या **महा-चिति** किसी वस्तु या तत्त्व को आधार बना कर ही व्यक्त होती है अर्थात् प्रकट होती है। इसके अधिष्ठान अर्थात् वाहन के तीन गुण हैं, जिनके द्योतक **रक्त कमल, सिंह** और **प्रेत** अर्थात् **शव** हैं। '**कमल**' से इच्छा-शक्ति अर्थात् **ब्रह्मा** अर्थात् '**रजो**'-गुण, '**सिंह**' से '**ज्ञान**'-**शक्ति** अर्थात् '**विष्णु**' अर्थात् '**सत्त्व**'-गुण और '**शव**' से '**क्रिया**'-शक्ति अर्थात् **शिव** अर्थात् '**तमो**'-गुण। शास्त्रों में दो मत हैं। एक जैसा अभी उल्लिखित हुआ है और दूसरा कि **क्रिया-शक्ति**—'**विष्णु**' है और '**ज्ञान-शक्ति**'—'**शिव**'। इन तीनों से **सृजन**, **स्थिति** और **संहृति**-शक्तियों का बोध है।

'**सिंहासन**' का रहस्यार्थ है कि यह तीनों का—संयुक्त-गुण-बोधक आसन है। तात्पर्य कि '**सिंह**' से **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव** के संयुक्त गुण का बोध होता है। 'देवी-पुराण' भी ऐसा कहता है कि '**सिंह**' की ग्रीवा पर **विष्णु**, शिर पर **शिव** आदि की अवस्थिति है। इसी हेतु रहस्यासन है—'**सिंह**' पर '**कमल**' और '**कमल**' पर '**शिव**' अर्थात् '**शव**'। इस रहस्य-ध्यान से ही '**पराम्बा दुर्गा**' **वर** और **अभय** दोनों देती है। यथा—

सिंहोपरि-स्थितं पद्मं, रक्तं तस्योर्ध्वगः शवः। तस्योपरि महा-माया, वरदाभय-दायिनी॥
एवं रूपेण यो ध्यात्वा, पूजयेत् सततं शिवां। ब्रह्म-विष्णु-शिवास्तेन, पूजिताः स्युर्न संशयः॥

२. **शशि-शेखरा**—जिसके शिखर अर्थात् मस्तक पर '**शशि**' वा '**चन्द्र**' हो। '**शशि**' के अनेक अर्थ हैं। साधारणतया इसका अर्थ है '**चन्द्र**'। परन्तु यह शब्द '**शश्**'-धातु का बना है, जिसका प्रयोग कूदते हुए चलने में होता है। इस भाव में '**शशि**' से **तीव्र उत्क्रामिणी शक्ति** का बोध है।

तात्पर्य कि वह गमन-शक्ति है, जो रेखा-वाहिनी नहीं है। इसको **विहङ्गम गति** कहते हैं। व्यष्टि में **आत्म-शक्ति** की यह दूसरी गति है, प्रथम प्रकार की गति है—**पिप्पिलिका-गति**। ये दोनों समष्टि भाव में भी हैं। इसी से अघटन-घटनाएँ अर्थात् असाधारण घटनाएँ होती हैं।

अथवा जब **'शशि'** अर्थात् शश-धारक पद के रौढ़िक अर्थ **'चन्द्र'** और **'चन्द्रमा'** हैं, तो इससे **परं-ज्योतिर्मयी** का बोध होता है।

'चन्द्र'-पद से **श्रेष्ठत्व** का भी बोध होता है, **रामचन्द्र** (रामों में श्रेष्ठ), **कृष्णचन्द्र** (कृष्णों में श्रेष्ठ), **पुरुषचन्द्र** (पुरुषों में श्रेष्ठ)। इस भाव में **'चन्द्र'**-धारण से **परमा-सत्ता को धारण करनेवाली** का बोध है। यद्वा **'चन्द्र'** का अर्थ है—सुख देनेवाला। इस प्रकार **सर्व-सुख-दात्री शक्ति-शीला** का बोध होता है।

यह **चित्-चन्द्र** है, भूत-चन्द्र नहीं। यह **अमृत-स्रावक** है, जिसकी स्थिति व्यष्टि में **आज्ञा-चक्र** से ऊपर **'सोम'-मण्डल** में है। इस भाव में **'शशि'—ब्रह्म की अमृतत्व** और **अमृत-करत्व** लक्षणा-द्वय का बोधक है। इससे भगवती की **निर्वाण-मोक्ष-दायिका धर्म-शक्ति** की सूचना मिलती है।

'शशि' के पर्याय-वाचक शब्द **'चन्द्रमस्'** के रूप में **'शशि-शेखरा'**-पद से **ज्योतिर्मय** यद्वा **कर्पूर-जैसा स्वच्छ बनानेवाली शक्ति** का बोध होता है। कर्पूर को **'चन्द्र'** कहते हैं और **'मा'** का अर्थ है बनानेवाला **(चन्द्र + मा + असि-उणादि)**। तात्पर्य कि जिसको इस **'चन्द्र'** का दर्शन होता है, वह **आनन्द-मय, ज्योतिर्मय** और **स्वच्छ** हो जाता है। जो कोई योग-क्रिया अर्थात् प्राण-योग-क्रिया द्वारा इस **'चन्द्र'** से निःसृत **अमृत-रस** का पान करता है, वह **अमरत्व** प्राप्त करता है।

३. मरकत-प्रख्या—'मरकत'-मणि के सदृश वर्णवाली। **'मरकत'** का रङ्ग हरा होता है। यह नील और पीत का मध्यवर्ती वर्ण है, जिसमें **हरितत्त्व** का अंश अधिक है। 'मत्स्य'-पुराण और 'कालिका'-पुराण में तीसी के फूल के जैसा वर्ण बताया है। इससे यह समझ पड़ता है कि **दुर्गा भगवती** का वर्ण **नीलाभ-हरित** है अथवा खूब गहरा हरा है, जिससे कभी उसमें नीलिमा की और कभी हरीतिमा की आभा झलकती है। **'ब्रह्म'** की साकारोपासना में, जिसका प्रतिपादन ब्रह्म-सूत्र **'रूपोपन्यासाच्च'** करता है, श्रुतियाँ शुक्ल, नील, पिङ्गल, लोहित वर्ण के साथ-साथ हरित वर्ण की भी व्यवस्था रखती हैं। ऐसा उल्लेख वृहदारण्यक (४ । ४ । ९) करता है—**'तस्मिन् छुक्लमुत नीलमाहुः पिङ्गलं हरितं लोहितं च। एष पन्था ब्रह्मणोहानु वित्तस्ते नैति ब्रह्म-वित् पुण्य-कृत-तैजसश्च।'**

जिस प्रकार **'कृष्ण'**-वर्ण से **'निर्गुणत्व'** का, **'नील'**-वर्ण से **'शब्द-ब्रह्मत्व'** का, **'रक्त'** से **'रजो'-गुण प्रधान ब्रह्मत्व** का बोध है, उसी प्रकार **'हरित'**-वर्ण—**'प्राण'-ज्योति** के आदि रूप का सूचक है। इसका अनुभव हमें प्रत्यक्ष हो सकता है। यथा—एक 'दीप-शिखा' के मध्य-भाग का वर्ण पीताभ होता है, परन्तु 'दीप-शिखा' के निम्न भाग में अर्थात् आदि भाग में देखने से नीलाभ-वर्ण देखने में आता है। इससे जाना जाता है कि 'दीप-शिखा'-ज्योति के सदृश **'प्राण'-ज्योति** का

आदि-रूप **नील-कान्त मणि (मरकत)** जैसा है। इस प्रकार सिद्ध है कि '**मरकत**'-प्रख्या से '**प्राण**'-**शक्ति**, जो ज्योति-स्वरूपा है, आद्या-शक्ति है, जिसकी परिवर्तित अवस्थाओं के अनुकूल रक्त आदि रूपों के ध्यान हैं, उसका प्रकृत-वर्ण '**मरकत**' व अतसी पुष्प जैसा है और अन्य वर्ण अप्रकृत अर्थात् परिवर्तन-जन्य हैं। इसका ज्ञान ग्राहक की ग्रहण-शक्ति पर निर्भर करता है। तात्पर्य कि हम जैसा इसको समझें, यह हमारे लिए वही और वैसी ही है।

४ **चतुर्भुजा**—चार हाथवाली। चारों भुजाओं में क्रमशः **१ शङ्ख, २ चक्र, ३ धनुष** और **४ शर** हैं। ये चारों आयुध **भगवती काली, तारा** और **षोडशी महा-विद्या** के आयुधों के पर्याय-वाचक हैं। '**शङ्ख**'—'**वर**' का, '**चक्र**'—'**अभय**' का, '**धनुष**' और '**शर**'—'**खड्ग**' और '**मुण्ड**' के द्योतक हैं। इसी भाव के द्योतक **भगवान् कृष्ण** के **शङ्ख, चक्र, गदा** और **पद्म** नामक चार आयुध हैं। इनके तात्पर्य निम्न प्रकार हैं—

(१) शङ्ख—'शम् शान्ति करणे + ख उणादि' के अनेक अर्थ हैं। शब्दार्थ है—**उपाधि को शान्त करनेवाला।** इसकी ध्वनि सुनकर दुष्ट प्रेतात्माएँ भाग जाती हैं। यह बहु-संख्या-वाचक भी है, जिससे **बहु शक्ति** का बोध होता है। इसका अन्य अर्थ है—**कुबेर का अक्षय भण्डार।** इससे यह '**वर**' का द्योतक है।

(२) चक्र—इसका एक अर्थ है गोलाकार अस्त्र, जिससे अपने भक्तों की रक्षा करती है। यह '**अभय**' का सूचक है। अथवा इससे चक्र के सदृश घूमनेवाले संसार का बोध होता है। इस भाव में '**चक्र-धारिणी**' से **विश्व-धारिणी का ज्ञान** होता है। तात्पर्य कि **विश्व की स्थिति का कारण** यही भगवती है।

(३) धनुष—इसका रहस्यार्थ शास्त्रों में कहीं '**मन**' कहा गया है, तो कहीं '**प्राण**'। इससे उस **सङ्कल्प-विकल्प-रहित मन** या **परिमार्जित चित्त-वृत्ति** का बोध होता है, जो **महा-वाक्यों** वा **मन्त्रों** के शर से अपने लक्ष्य को विद्ध करती है। इसका रहस्यार्थ क्रिया-योग और ज्ञान-योग में भिन्न होता हुआ भी एक ही तात्पर्य का बोधक है। 'श्रुति' में बताया है—'**धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपास निशितं सन्दधीत। आयम्य तद्-भाव-गतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि।**' (मुण्डक २।२।३)। तात्पर्य कि धनुष लेकर उस पर उपनिषत्-रूपी शर को, जो उपासना द्वारा तीक्ष्ण हो गया है, रख, धनुष को खींच, निशाना लगा, अक्षर अर्थात् ब्रह्म-रूपी लक्ष्य को बेधना है।

(४) शर—ये '**पञ्च-तन्मात्रा**' या '**पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय**' हैं। इन्हें लक्ष्य पर फेंक कर अर्थात् अन्तर्मुखी करके ही इष्ट वा ध्येय वा **साध्य की प्राप्ति** होती है।

संक्षेप में जिस प्रकार **भगवती आद्या** वा **काली** के रूप में '**खड्ग**' अर्थात् **ज्ञान**, '**मुण्ड**' अर्थात् **तत्त्व-ज्ञान** देकर मोक्ष देती है, उसी प्रकार इस रूप में तत्त्व-ज्ञान-रूपी '**धनुष**' पर मन्त्र-रूपी '**शर**' को चढ़ा भक्तों से लक्ष्य विद्ध करवाती है अर्थात् मोक्ष देती है। निदिध्यासन की चार बाधाओं—**१ लय, २ विक्षेप, ३ कषाय** और **४ रसास्वाद** को दूर करना ही इन **चार आयुधों का रहस्य** है। इन **चारों बाधाओं की व्याख्या** इस प्रकार है—

(क) चित्त की खण्डाकार-वृत्ति में अर्थात् पूर्ण द्वैत भाव की निष्क्रिय अवस्था को '**लय**' कहते हैं। अर्थात् चित्त-वृत्ति की जड़ता ही '**लय**' है। यह दो प्रकार का है—एक '**पर-लय**', जो वाञ्छित है और दूसरा '**अपर-लय**', जो अवाञ्छित या अनिष्टकारी है। यही दूसरा (किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता) विघ्न या बाधा-स्वरूप है। प्रथम है परमानन्द में चिरकाल अर्थात् अनेक जन्मों में अष्टाङ्ग-सहित समाधि के अभ्यास से '**लय**' और दूसरा है बहिर्मुखी वृत्तियों की विषय-लीनता का भाव यद्वा मूर्च्छावस्था, जैसे आलस्य-वश स्तब्धी-भाव-लक्षण, निद्रा-रूप।

(ख) राग को '**विक्षेप**' कहते हैं। यह भी दो प्रकार का है—**१ पर-राग, अनुराग** या **पर-वासना।** यह राग का परिमार्जित रूप है, जो केन्द्रीभूत होकर अखण्डाकार-वृत्ति का या पर-मन का नित्यानन्द में अनुराग है। यह वाञ्छनीय है। **२ विषय राग,** जो यथार्थ ज्ञान से रहित है। यही विघ्न या बाधक है, जो मन को असार और अनित्य विषयों के उपभोग की तरफ खींचता है।

(ग) अखण्डाकार-वृत्ति अर्थात् केन्द्रित चित्त-वृत्ति से सत्य-शिव-सुन्दर वस्तु के ग्रहण में पूर्व-जन्मार्जित कुसंस्कार-वश अनिच्छा को '**कषाय**'-भाव कहते हैं। तात्पर्य कि सजातीय चित्त-प्रवाह को भङ्ग कर देनेंवाला विघ्न '**कषाय**' है।

(घ) सविकल्पानन्द-बाह्य प्रपञ्च-निवृत्ति-जन्य आनन्द अर्थात् चित्त-वृत्ति की बहिर्मुखता के हटने से जो आनन्द होता है, उसी को '**रसास्वाद**' कहते हैं। यह **ब्रह्मानन्द** अर्थात् **अन्तर्मुखी आनन्द** से भिन्न है। अतएव **ब्रह्मानन्द** की प्राप्ति में यह बाधा करता है। अर्थात् **अपूर्ण आनन्द** से **पूर्णानन्द** की प्राप्ति में बाधा पहुँचती है। यह अनिवर्चनीय है क्योंकि ज्ञातृ, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिपुटी के लय हो जाने पर क्या रहता है, यह कहने की वस्तु नहीं है। इसी से इसको चतुर्थी अवस्था कहते हैं।

५ त्रिनेत्रा—तीन नेत्र-वाली। शास्त्रों में ये तीनों नेत्र '**सूर्य**' (दाहिना), '**चन्द्र**' (बाँयाँ) और भ्रू-मध्यस्थ अर्थात् दोनों नेत्रों के बीच में '**अग्नि**' के बोधक बतलाए गए हैं। '**त्रि-नेत्रा**' से निम्न नौ प्रकार के रहस्यों का बोध होता है—

(१) **सर्व-साक्षिणी।** दिन में **सूर्य**-नेत्र से, रात्रि में **चन्द्र**-नेत्र से और सन्ध्या-समयों में **अग्नि**-नेत्र से देखती है।

(२) **त्रिगुणा** या **त्रिशक्ति-शीला।** चन्द्र, सूर्य और अग्नि से **इच्छा, ज्ञान, क्रिया**—इन तीन शक्तियों का बोध होता है।

(३) **सृष्टि-स्थिति-संहार—त्रि-शक्ति-रूपिणी।** चन्द्र से **सृष्टि**, सूर्य से **स्थिति** और अग्नि से **संहार**-क्रिया का सम्पादन होता है।

(४) **त्रि-कालज्ञा** अर्थात् **भूत, वर्तमान** और **भविष्य** की जाननेवाली। भगवती अनादि सर्व-व्यापिनी नित्या सत्ता है। भूत को देखनेवाली से '**आद्या**' अर्थात् अनादि है। वर्तमान को देखनेवाली होने से '**सर्व-व्यापिका**' और भविष्य को देखनेवाली होने से '**नित्या**' वा '**अपरिणामिनी सत्ता**' है।

(५) **अभेद-भाव दिखलानेवाली** और स्वयं तद्-भावापन्ना तीन नेत्रों से क्रमशः तीनों मण्डलों वा भुवनों अर्थात् तीनों लोकों को देखती है। इन तीनों लोकों या भुवनों से **ज्ञातृ, ज्ञान, ज्ञेय (प्रमातृ, प्रमाण, प्रमेय)**—इस त्रिपुटी का बोध होता है। इस त्रिपुटी को देखती है, जिससे यह **अभेद-भाव दिखलानेवाली ऋतम्भरा प्रज्ञा** है।

(६) **भगवती स्वयं सब कुछ है** अर्थात् **प्रमाता** भी वही है, **प्रमाण** भी वही और **प्रमेय** भी वही है।

(७) **त्रि-विध आत्मा** अर्थात् **१ जीवात्मा, २ अन्तरात्मा** और **३ परमात्मा** की ऐक्य-कारिका महा-विद्या।

(८) सोम-सूर्यानलात्मक त्रि-नेत्र **मातृका-मन्त्र के तीन खण्डों के द्योतक** हैं। इन खण्डों की अधिष्ठात्री देवताएँ हैं—**सावित्री, गायत्री** और **सरस्वती** अर्थात् **महा-काली, महा-लक्ष्मी** और **महा-सरस्वती,** जो वाक् (शब्द) की **ऋक्, साम** और **यजुस-रूपी त्रि-शक्ति-रूपा** हैं।

(९) त्रि-नेत्र वा त्रि-दर्शन से **१ अद्वैत, २ विशिष्टाद्वैत** और **३ द्वैत**—इन तीन दर्शनों का बोध होता है। इस प्रकार **भगवती त्रि-विध दर्शनों की प्रतिपादिता परा-विद्या** है।

६ अङ्गद (केयूर), हार, कङ्कण, काञ्ची, नूपुर—पञ्च-आभरणों से भूषिता—'आभरण' का रहस्यार्थ क्या है, जब कि शरीर, आयुध आदि के सदृश ये स्थूल रूप के अङ्ग नहीं हैं? श्रुति बताती है कि **'आभरण'** से **धर्मी-शक्ति के निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अशोकत्व, अमृतत्व** आदि धर्मों का बोध होता है। देखिए 'भावनोपनिषत्'। **अङ्गद** से, जिसका शब्दार्थ है शरीर-घटक पदार्थ वा तत्त्व अर्थात् शरीरांश—**'अङ्गं ददातीत्यङ्गदम्'—निर्विषयत्व का बोध** होता है। **'हार'—'शोकं दुःखं वा हरतीति हारः'—अशोकत्व** का और **'कङ्कण'**—कं + कण-शब्दे + अच्—**मनोहारी शब्द-कारक पदार्थ** या **अनाहत-ध्वनिकारक तत्त्व** का सूचक है, जिसका अन्तस्तात्पर्य है—**'निरञ्जनत्व'। 'काञ्ची'**—'कचि प्रकाशे + इन् वा ङीप्'—से **अमृतत्व** का और **'नूपुर'** से **'अजरत्व'** का बोध होता है। यद्वा **'नू-पुर'**—'नू आभरणं पूरयति'—से **सभी धर्मों की पूर्ति करनेवाले धर्म** का बोध है। ये सभी आभरण **'आमुक्त'** हैं अर्थात् सम्बद्ध हैं। इससे **अविना-भाव-सम्बन्ध** का बोध होता है अर्थात् इन धर्मों से धर्मी अर्थात् भगवती का नित्य सम्बन्ध है। **'आमुक्त'—'आ समन्तान् मुक्तः'** से सब प्रकार से **अनावृत** अर्थात् **पूर्णतया प्रकट** का ज्ञान होता है।

७ रत्नोल्लसत्-कुण्डला—रत्न के सदृश प्रकाशवान कुण्डलोंवाली। **'रत्न'**-शब्द **'रम्'**-धातु से बना है, अर्थ है रमणीय। अतः रमणीयता से उल्लसित **'कुण्डल'** अर्थात् गोलाकार घनी-भूत शक्ति को धारण करनेवाली।

अथवा इससे **श्रेष्ठ आनन्द-मयी प्राण-शक्ति** का बोध होता है—**'रत्नं श्रेष्ठं उल्लसितं आनन्द-विग्रहं कुण्डलमेव कुण्डला।'**

अथवा **सृष्टि-कारिणी सृजन-शक्ति की धारणा** करनेवाली—**'कुं पृथ्वीं उलयति विस्तारयति इति कुण्डलो यस्याः सा'।**

अथवा **रक्षण-शक्ति की धरित्री** महा-शक्ति—'**कुण्डि रक्षणे कुण्डलाति इति कुण्डलः**'। अथवा स्वयं **परमानन्द-मयी कुण्डला (कुण्डली)** स्वरूपा। यही तात्पर्य युक्त-तम है।

८ **दुर्गति-हारिणी**—'**दुर्गति**' का अर्थ है बुरी गति। यह सब प्रकार की बुरी गति को नष्ट करती है। गति से शारीरिक, आर्थिक, मानसिक आदि सभी प्रकारों की गतियों से तात्पर्य है। '**दुर्गति**' अर्थात् तापों को अर्थात् **भौतिक, दैविक और आत्मिक त्रि-तापों को नष्ट करनेवाली, भोग और मोक्ष दोनों को देनेवाली** भगवती है।

***

२. अष्ट-भुजी दुर्गा

'नवार्ण मन्त्र' के अनुसार इस भगवती का **तेजो-रूप (अनलात्मक) ध्यान** है—

विद्युद्दाम-सम-प्रभां मृग-पति-स्कन्ध-स्थितां भीषणाम्।
कन्याभिः करवाल-खेट-विलसद् हस्ताभिरासेविताम्॥
हस्तैश्चक्र-गदाऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्।
विभ्राणामनलात्मिकां शशि-धरां दुर्गां त्रिनेत्रा भजे॥

बिजली के सदृश वर्णवाली, मृग-पति अर्थात् सिंह के स्कन्ध वा ग्रीवा पर सवार, भीषणा अर्थात् कराल (डरावनी) आकृतिवाली, कन्याओं अर्थात् कुमारी-गण से, जिनके हाथों में करवाल अर्थात् खड्ग और खेट अर्थात् ढाल हैं, वेष्टित, (आठों) भुजाओं में चक्र, गदा, खड्ग, ढाल, शर, धनुष, गुण (रक्षा का एक साधन) और तर्जनी-मुद्रा (सावधानकारक) रखती हुई अनलात्मिका अर्थात् तेजोराश्यात्मिका चन्द्र-धारिणी, तीन नेत्रवाली दुर्गा को भजता हूँ।

१. **विद्युद्-दाम-सम-प्रभा**—यह ध्यान **तेजः-स्वरूपा** '**दुर्गा**' का है। '**विद्युल्लता**'—**चित्-शक्ति** की द्योतक है। 'तैत्तरीय'-श्रुति कहती है कि '**विद्युत्**'—'**ब्रह्म**' है, '**शक्ति**' है—'**बलमिति विद्युति**'। '**ब्रह्म**' वा **परात्परा शक्ति** को '**विद्युत्**' क्यों कहते हैं? इसलिए कि इसके स्मरण-मात्र से अन्धकार का नाश हो, प्रकाश का आविर्भाव होता है। अथर्वशिर उपनिषत् कहता है—

'अथ कस्मादुच्यते वैद्युतम् यस्मादुच्चार्यमाण एव व्यक्ते महसि तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम्।'

'वृहदारण्यक' भी कहता है—'**विद्युद् ब्रह्म......**' (५।७)। 'तन्त्र' का भी कहना यही है। 'मन्त्र-महोदधि' कहता है कि '**विद्युल्लता**' ही '**चित्-शक्ति**' है। यही '**प्राण-शक्ति**' है, जिसके बिना किसी पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं है। जड़ पदार्थों यथा मिट्टी, पत्थर आदि में यह शक्ति (**चेतना** व **प्राण**) सोती रहती है, वनस्पति आदि में इसकी **स्वप्नावस्था** और जीवों में **जाग्रदवस्था** है।

२. **मृगपति**—इससे **सिंह** और **शव-रूपी शिव** दोनों का बोध होता है। **पशुपति शिव** को भी कहते हैं, कारण ये पशुओं—देवताओं के पति वा स्वामी हैं। शरभोपनिषत् श्रुति भी कहती है—

'सर्वे देवाः पशुतामवापुः स्वयं तस्मात् पशुपतिर्बभूव।'

३. भीषणा—अर्थात् कराला! **भीषणत्व** या **करालत्व—ब्रह्म की एक विशिष्ट लक्षणा** है, जिसे गीता '**सुदुर्दर्श**'-पद से व्यक्त करती है—'**सुदुर्दर्शमिदं रूपं, दृष्टवानसि यन्मम।**'

भगवान् कृष्ण ने, जो **सगुण ब्रह्म** हैं, अपने **भक्त-प्रवर सखा अर्जुन** को यह भीषण रूप दिखाया था। यहाँ शङ्का हो सकती है कि यह जगज्जननी '**भीषणा**' अर्थात् जिसको देखने से भय हो, वैसी क्यों है? 'श्रुति' इसका निराकरण इस प्रकार करती है कि इससे सभी डरते हैं, यह किसी से नहीं डरती। इसी के डर से वायु ठीक प्रकार से बहता है, सूर्य उदय होता है। इसी प्रकार प्रकृति के सभी कार्य शृङ्खला-बद्ध होते हैं (देखिए, नृसिंह-पूर्व-तापिन्युपनिषत्)।

इसके सिवा '**विराट्**'-**स्वरूप** भय-कारक होता ही है। जब यह '**महतो महीयान्**' है अर्थात् विराट् से भी अधिक विराट् है; तब इसका '**भीषणत्व**' स्वाभाविक ही है।

४. कन्याओं से सेविता—'कन्या'-पद के अनेक तात्पर्य हैं। इसका एक अर्थ है **ज्योतिष्मती**—'कन् प्रकाशने + यक् उणादि + टाप्'। इस भाव में भगवती **प्रकाश-मण्डल से वेष्टिता** हैं, ऐसा बोध है। दूसरा अर्थ है—**अ-विवाहिता व्यक्ति शक्ति।** इस भाव में **अपञ्चीकृत तत्त्वों से वेष्टिता** हैं, यह तात्पर्य है। कन्याओं के हाथों में **तलवार (करवाल)** और **ढाल (खेट)—हननात्मक** तथा **रक्षणात्मक शक्ति** के द्योतक हैं। संक्षेप में यह भाव है कि भगवती '**कन्याओं**' अर्थात् **सृजन-शक्ति, रक्षण** वा **पालन-शक्ति** और **संहार-शक्ति** से सेविता अर्थात् युक्ता हैं।

५. अष्ट-भुजा—आठ भुजाओं से **१ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ मन, ७ बुद्धि** और **८ अहङ्कार**—इन आठों प्रकृतियों का बोध होता है। इस प्रकार अनुपहित महा-चिति उपहित चेतनावाली भी है अर्थात् **परात्परा भगवती—प्रकृति-धारिणी, प्रकृति-रूपिणी** भी है। इन हाथों में अवस्थित **आठों आयुध** तत्-तत् प्रकृति के नियन्त्रक हैं।

शशि-धरा, त्रि-नेत्रा और **दुर्गा** के तात्पर्य बताए जा चुके हैं।

❀❀❀

३. दश-भुजी दुर्गा

दश-भुजा कात्यायनी प्राण-महा-शक्ति का प्रकृत रूप है, जिसने '**महिषासुर**' अर्थात् **महा-मोह-रूपी आसुरी सर्ग का दमन** किया था—

कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि, मूर्तिं दश-भुजां तथा। त्रयाणामपि देवानामनुकारण-कारिणीम्॥
जटा-जूट - समायुक्तामर्धेन्दु - कृत - शेखराम्। लोचन - त्रय-संयुक्तां, पद्मेन्दु - सदृशाननाम्॥
अतसी-पुष्प-वर्णाभां, सुप्रतिष्ठां प्रलोचनाम्। नव-यौवन-सम्पन्नां, सर्वाभरण-भूषिताम्॥
सुचारु-दशनां तद्-वत्, पीनोन्नत-पयोधराम्। त्रिभङ्ग-स्थान-संस्थानां, महिषासुर-मर्दिनीम्॥
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात्, खड्गं चक्रं क्रमादधः। तीक्ष्ण-वाणं तथा शक्तिं, वामतोऽपि निबोधत॥

खेटकं पूर्ण - चापं च, पाशमंकुशमूर्ध्वतः। घण्टां वा परशुं वाऽपि, वामतः सन्निवेशयेत्॥
अधस्तान्महिषं तद्-वद्, वि-शिरस्कं प्रदर्शयेत्। शिरच्छेदोद्भवं तद्-वद्, दानवं खड्ग-पाणिनम्॥
हृदि शूलेन निर्भिन्नं, निर्यदन्त्र - विभूषितम्। रक्त-रक्ती - कृताङ्गश्च, रक्त - विस्फारितेक्षणम्॥
वेष्टितं नाग - पाशेन, भ्रुकुटी - भीषणाननम्। स-पाश-वाम-हस्तेन, धृत-केशं च दुर्गया॥

अर्थात् दश-भुजा कात्यायनी देवी तीनों देवों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव की जननी हैं। जटा-जूट से युक्ता, अर्ध-चन्द्र से विभूषिता, त्रि-नेत्रा, पद्म और चन्द्र के सदृश प्रसन्न मुखवाली, अतसी के फूल अथवा मरकत समान वर्णवाली, सुन्दर भाव से अवस्थिता, सुन्दर नेत्रवाली, नव-युवती, सभी आभरणों से भूषिता, सुन्दर दाँतवाली, बड़े स्तनवाली, त्रिभङ्गा स्थान में रहनेवाली, महिषासुर की मर्दन करनेवाली, दाहिने हाथों में ऊपर त्रिशूल फिर क्रमशः खड्ग, चक्र, शर और शक्ति हैं, बाँएँ हाथ में खेटक, धनुष, पाश, अंकुश और घण्टा अथवा परशु (फरसा) हैं। नीचे में छिन्न-शिर महिष है। कटे हुए धड़ से निकला, खड्ग हाथ में लिए, असुर देवी के त्रिशूल से हृदय में विद्ध है। असुर की अँतड़ी निकली है, जिस कारण लहू के निकलने से असुर का पूर्ण शरीर लहूलुहान है। उसकी लाल आँखें विस्फारित हैं। वह देवी द्वारा नाग-पाश में बद्ध है। उसकी भ्रुकुटी ऐसी हैं कि मुख-मण्डल भीषण दीखता है। देवी ने पाश-युक्त, वाम-हस्त से उसके केशों को पकड़ रखा है।

१. दश-भुजा—दश-भुजाएँ **दश-प्राण-स्वरूपिणी** हैं। व्यष्टि दुर्ग में स्थिता दुर्गा इन्हीं **दश-प्राण-रूपी भुजाओं से क्रिया-शीला** हैं। इन हाथों में अवस्थित आयुध इनकी तत्-तत् क्रियाओं के द्योतक हैं। तात्पर्य यह है कि **मन-रूपिणी दुर्ग की स्वामिनी भगवती दुर्गा दश-भुजा-रूपी इन्द्रियों से क्रिया-शीला** हैं और **दश-आयुध**-रूपी क्रिया-शील गुणों से वह **इन्द्रियों का संयमन** करती हैं। इसी **प्राण-शक्ति** से **इच्छा, ज्ञान** और **क्रिया-शक्ति-रूपी त्रिदेवों की उत्पत्ति** होती है और इसी में वे लीन होते हैं।

२. जटा-जूट—इससे **शृङ्खला-बद्ध धर्म** का बोध होता है। इस शृङ्खला पर किसी प्रकार का आघात पहुँचने से, शृङ्खला का अति-क्रमण होने पर **प्राण-शक्ति** कुपित हो जाती है। इसी कारण इसे **उग्रा, भीषणा, कराला** आदि कहते हैं।

३. पद्मेन्दु-सदृशानना—पद्म और इन्दु के सदृश प्रसन्न मुखवाली। **प्राण-शक्ति** का प्रकृत रूप **'पद्म'** के समान सुन्दर होता हुआ उसी के समान विकासोन्मुख है और **'इन्दु'** (**चन्द्र**) के सदृश सौम्य और शीतल होता हुआ मध्यावस्था से पूर्णावस्था प्राप्त करनेवाली है। अतः **प्राण-शक्ति की सम्वर्धना** ही **दश-भुजी दुर्गा भगवती** की वास्तविक पूजा है।

४. नव-यौवन-सम्पन्ना—अपचय-रहिता अर्थात् ह्रास-रहिता होने से कालातीता है, ऐसा बोध होता है।

५. सर्वाभरण-भूषिता—सभी आभरणों से भूषिता अर्थात् सर्व-गुणोपेता का तात्पर्य है।

६. **सुचारु-दशंना**—सुन्दर दाँतवाली अर्थात् सुन्दर नियन्त्रण-शक्ति-शीला है।

७. **त्रिभङ्ग-स्थान-संस्थाना**—यह उन तीनों स्थानों में रहती है, जहाँ ग्रन्थि का भङ्ग वा भेद होता है। यह '**हृदय**' में रहती है, जहाँ '**ब्रह्म**'**-ग्रन्थि** भेद कर आना होता है; '**भ्रू**'**-मध्य** में रहती है, जहाँ '**विष्णु**'**-ग्रन्थि** भेद कर आना होता है और '**ब्रह्म-रन्ध्र**' में रहती है, जहाँ '**रुद्र-ग्रन्थि**' भङ्ग कर आना होता है। इसी अवस्था में '**महिषासुर**' अर्थात् **महा-मोह का मर्दन** होता है और **प्राण-शक्ति—महिष-मर्दिनी** कहला सकती है। '**महिष**' के स्थूल शरीर—'**मोह**' वा '**अविद्या**' के बाहरी रूप का नाश होने पर उसका आन्तरिक रूप हृदय में प्रकट होता है, जिसे '**प्राण-शक्ति**' **का आत्म-शूल** हृदय में प्रविष्ट होकर निष्प्राण वा नि:शक्त करता है। **सम्वर्धित प्राण-शक्ति के पाद-तल में अर्थात् नियन्त्रित होकर महिषासुर नित्य रहता है।** भगवती से महिषासुर ने तीन वरों में एक वर यह भी माँगा था कि मैं जीवित ही तुम्हारे वाम-पाद-तल में नित्य रहूँ और तुम्हारे मुख को देखता रहूँ।

८. **निर्यदन्त्र-विभूषितम्**—इससे तात्पर्य है कि सब मैल निकल चुके हैं।

९. **रक्त-रक्ती-कृताङ्गम्**—इससे ऐसा बोध होता है कि **महा-मोह-ग्रसित जीव के समस्त राग** बाहर निकल गए हैं।

१०. **रक्त-विस्फारितेक्षणम्**—इसका अर्थ है—**आसुरी-भावापन्न जीव का आश्चर्य।** भय से भी आँखें विस्फारित होती हैं, परन्तु महा-मोह में ग्रसित जीव को भय कैसा? असुर-राज **रावण** को भी भय का नाम नहीं था। ये तो ज्ञानी थे। जिस प्रकार '**ब्रह्मा**' के प्रपौत्र **रावण** को '**राम का ज्ञान**' था, उसी प्रकार '**शिव**'-तनय **महिषासुर** को भी ज्ञान था **भगवती दुर्गा** का। इस तथ्य को सिद्ध करता है '**असुर**' अर्थात् आसुरी-भावापन्न जीव का '**खड्ग**'**-पाणि** होना। '**खड्ग**'**—ज्ञान** का द्योतक है। इसी से '**महिषासुर**' को अपने आकस्मिक परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ।

११. **नाग-पाशेन वेष्टितं**—नाग-पाश से बँधा। इसके अनेक तात्पर्य हैं। एक तो इससे **ॐकार-पाश, प्रणव-विद्यानुबन्धन** का बोध है। **प्रणव-विद्या** के बिना जीव की **अविद्या (महा-मोह)** दूर नहीं होती। दूसरे, नग का अर्थ है पर्वत में अवस्थित, या पर्वत में उत्पन्न—'नाग + अण्'। अर्थात् जीव-शरीर में स्थित विन्ध्य, हिमाचल, मेरु आदि पर्वतों में अवस्थित विशिष्ट **नाड़ी-रूप पाश** से विद्ध। **सुषुम्ना-रूपी पाश** से जब तक जीव अपने को आबद्ध नहीं करता, तब तक किसी प्रकार की **आध्यात्मिक उन्नति** नहीं हो सकती। इस **पाश-बन्धन** के दृढ़ीकरण का द्योतक है—**श्रीदुर्गा** द्वारा **महिषासुर** की चोटी को पकड़े रखना।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि **महिषासुर-मर्दिनी दुर्गा** के प्रधानतया तीन रूप हैं—**१ अष्टादश भुजावाली उग्र-चण्डा, २ षोडश-भुजावाली भद्र-काली** और **३ दश-भुजावाली सौम्य-रूपिणी कात्यायनी।**

प्रश्न उठता है कि एक ही असुर का तीन बार तीन रूपों द्वारा क्यों दमन हुआ? इसका उत्तर यह है कि '**अविद्या**' व '**मोह**' तीन गुणों के आश्रित है। दूसरे शब्दों में **तीन प्रकार के मोह** हैं—

१ **तामसिक मोह**, २ **राजसिक मोह** और **सात्विक मोह**। **'मोह'—मल** है, जिसका अन्त **निस्त्रैगुण्यावस्था** में ही होता है। इसी से **भगवान् कृष्ण** ने अर्जुन को **निस्त्रैगुण्य** होने का उपदेश दिया था।

सबसे पहले **'तामसिक मल'** का नाश होता है। इस हेतु **'उग्र-चण्डा'**-साधन द्वारा **क्रिया-योग** की पद्धति से **तमो-गुणाश्रित 'मोह'** दूर होता है। फिर **'राजसिक मोह'** के नाशार्थ **अर्ध-सौम्य** और **अर्ध-उग्र साधन** की आवश्यकता होती है क्योंकि **रजो-गुण** सत्त्व और तामस इन गुणों का मिश्रण है। अन्त में **'सात्विक'-मोह** के नाश के लिए **'शुद्ध सौम्य-साधन** की ही आवश्यकता होती है क्योंकि सत्त्व-गुण शुद्ध सौम्य है।

'महिषासुर' द्वारा **देवी** से सर्व-प्रथम **सौम्य-रूप** में ही मारने का वर माँगना यह बतलाता है कि एक ही जन्म में एक ही बार में जीव के **आसुरी सर्ग** नष्ट नहीं होते। अनेक बार वा अनेक जन्मों में सच्ची साधना करने से ही **अविद्या** का पूर्ण रूप से नाश होकर **'मोक्ष'** होता है। **'गीता'** भी ऐसा ही कहती है—**'अनेक जन्म-संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।'**

'शारदीय नवरात्र' के शुभ अवसर पर **दश-भुजी सौम्य-रूपिणी कात्यायनी—महिष-मर्दिनी दुर्गा की आराधना** के समय **सरस्वती, लक्ष्मी, कार्त्तिकेय** और **गणेश** की स्थिति की कल्पना की जाती है। सूक्ष्म रूप में ये सभी स्वरूप भगवती में अन्तर्निहित हैं, इनकी पृथक्-पृथक् कल्पना की आवश्यकता नहीं है। किन्तु स्थूल रूप में, **आसुरी सर्गों को नष्ट करनेवाली विजयी शक्तियों** के स्पष्ट परिचय के लिए इनकी कल्पना उचित ही है।

सरस्वती—विद्या अर्थात् **यथार्थ ज्ञान-स्वरूपा वाक्-देवी** हैं। अविद्या-स्वरूप आसुरी सर्ग के दूरी-करण हेतु **आत्म-विद्या** की आवश्यकता होती है। **आत्म-विद्या** के बिना अविद्या का नाश सम्भव नहीं है। यह **आत्म-विद्या**—प्रकृति-रूपा **प्राण-शक्ति** से ही उत्पन्न होती है।

लक्ष्मी—दैवी सम्पत्ति-स्वरूपा है। इसी सम्पत्ति से **आसुरी सर्गों से युद्ध** किया जाता है। इसी के बल पर विद्या-अविद्या को परास्त करने में समर्थ होती है। इसे **विज्ञान-शक्ति** कहते हैं।

कार्तिकेय—दैवी सम्पद्-रूप महा-सैन्य का सेनानी—यह **संयतेन्द्रिय-भाव** है। इसे साधारणतया **'कुमार'** कहते हैं। **'कुमार'** से, यदि जैसा हम समझते हैं, अविवाहित का बोध है, तो ये अविवाहित नहीं हैं। शास्त्रों में इनकी दो स्त्रियों का उल्लेख है। तो इनको **'कुमार'** क्यों कहते हैं? इसका कारण यह है कि यह **'कु'** अर्थात् **कुत्सित भावों को मारनेवाले** वा दूर करनेवाले हैं—**'कुं मारयति इति कुमारः।'** कुमार से **ब्रह्मचारी** अर्थात् **संयतेन्द्रिय** का भी बोध होता है।

गणेश—गण + ईश = गणेश। **'गण'**-शब्द के कई अर्थ हैं। यहाँ यह शब्द संख्या-वाचक है। काल की गति की विच्छेदावस्था ही संख्या है। दूसरे शब्दों में **'गणेश'**-पद यहाँ **स्थिरत्व**-भाव का द्योतक है। **स्थिरता-भाव** के बिना **आसुरी सर्गों से युद्ध में विजय** नहीं पाई जा सकती।

❋ ❋ ❋

भगवती दुर्गा के चार अन्य रूप

'चतुर्भुजी दुर्गा', **अष्ट-भुजी दुर्गा'** एवं **'दश-भुजी दुर्गा'** के अतिरिक्त **भगवती दुर्गा** के अन्य अनेक रूप हैं, जिनकी उपासना उपासक करते हैं। इस सन्दर्भ में यहाँ विशेष रूप से प्रचलित **भगवती दुर्गा** के चार रूप—**१. अपराजिता दुर्गा, २. चण्डी, ३. महा-माया** एवं **४. मूल प्रकृति -रूपा दुर्गा** के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है। यथा—

१. अपराजिता दुर्गा

('दुर्गा-महा-शक्ति' का विराट् स्वरूप)

गिरि-राज हिमालय की प्रार्थना पर **श्री भगवती जी** ने एक बार अपना विराट् रूप दिखाया था। उस समय **विष्णु** आदि सभी देवता वहाँ उपस्थित थे। विराट् रूप का मस्तक **'स्वर्ग-लोक'** और नेत्र **'चन्द्रमा'** तथा **'सूर्य'** थे। **'दिशाएँ'** कान, **'वेद'**-वाणी और **'पवन'**—प्राण थे। हृदय—**'विश्व'** था और जङ्घा—**'पृथ्वी'**। **'व्योम-मण्डल'** उसकी नाभि तथा **'नक्षत्र-वृन्द'**—वक्ष:-स्थल थे। **'महर्लोक'**—कण्ठ और **'जन-लोक'**—मुख था। इन्द्र आदि **'देवता'** उस महेश्वरी के बाहु थे और **'शब्द'** ही श्रवण। दोनों **'अश्विनी-कुमार'** उसकी नासिका थे, **'गन्ध'** घ्राणेन्द्रिय थी। मुख—**'अग्नि'** और पलकें—**'दिवा-रात्रि'** थीं। **'ब्रह्म-धाम'**—भ्रू-विलास था और **'जल'**-तालु। **'रस'** ही रसना तथा **'यम'** ही दंष्ट्रा थे। **'स्नेह-कला'**—दाँत थी और **'माया'** थी हँसी। **'सृष्टि'** ही कटाक्ष-विक्षेप तथा **'लज्जा'** ही होठ थी। **'लोभ'**—अधर थे और **'धर्म-पथ'**—पीठ। इस जगती-तल में जो सृष्टि-कर्त्ता रूप से विख्यात हैं, वे **'प्रजापति'** ही उस देवी के मेढ्र थे। **'समुद्र'**—उदर, **'पर्वत'**—अस्थि, **'नदी'**—नाड़ी तथा **'वृक्ष'** ही उसके रोम थे। **'कौमार'**, **'यौवन'** और **'जरावस्था'**—उसकी उत्तम गति थी। **'मेघ'** ही केश और **'दोनों सन्ध्याएँ'**—वस्त्र थीं। **'चन्द्रमा'** ही जगदम्बा का मन था। विज्ञान-शक्ति **'विष्णु'** और अन्त:करण **'रुद्र'** थे। **'अश्व'** आदि **जातियाँ** उस **व्यापक परमेश्वरी** के नितम्ब के निम्न-भाग में स्थित थीं। **'अतल'** आदि **'महा-लोक'** उसकी कटि के अधो-भाग थे। देवताओं ने देवी के ऐसे महान् रूप का दर्शन किया, जो **सहस्त्रों ज्वाला-मालाओं से परिपूर्ण** था और **लपलपाती हुई जीभ** से अपना ही बदन चाट रहा था। उसकी दाढ़ों से **कंट-कट शब्द** होते थे और आँखें आग उगल रही थीं। नाना शस्त्रों को धारण करनेवाला **वीर-वेष** था। उसके **सहस्त्र मस्तक, नेत्र** तथा **चरण** थे। **करोड़ों सूर्य** और **कोटि विद्युन्मालाओं** के समान उसकी देदीप्यमान **कान्ति** थी। वह **महा-घोर भीषण रूप** हृदय तथा नेत्रों को आतङ्क पहुँचानेवाला था।

उसे देखते ही सभी देवता हाहाकार करने लगे, उनका हृदय कम्पित हो गया और वे बेसुध

हो गए। उन्हें इतना भी स्मरण न रहा कि ये **जगज्जननी देवी** हैं। **महेश्वरी** के चारों ओर जो '**वेद**' मूर्तिमान् होकर खड़े थे, उन्होंने देवताओं को मूर्छा से जगाया। होश में आने पर वे नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर गद्‌गद कण्ठ से **भगवती का स्तवन** करने लगे। स्तुति समाप्त होने पर उन्हें भयभीत जानकर **देवी** ने **परम सुन्दर रूप** धारण करके उन्हें सान्त्वना दी। (देवी भागवत)।

व्यक्तिगत देह, विराट् भौतिक जगत्, अन्तस्तल की अधिष्ठात्री अपराजिता भगवती दुर्गा

उक्त सौम्य-रूप-धारिणी **महा-माया** का नाम '**दुर्गा**' है, वह '**अपराजिता**' हैं। कठिनता से जानी जाती हैं तथा पराभूत कभी भी नहीं होती हैं। उनकी ऐसी ही प्राचीन प्रतिज्ञा है। सुनिए—

यो मां जयति संग्रामे, यो मे दर्पं व्यपोहति। यो मे प्रतिबलो लोके, स मे भर्ता भविष्यति॥

जो मुझे संग्राम में जीतेगा, मेरे दर्प को दूर करेगा और नहीं तो बराबर का बलवाला ही होगा; वही मेरा भर्त्ता बनेगा! कथा प्राचीन है और यह प्रतिज्ञा उससे भी पुरानी—कितनी पुरानी, यह कौन कहे?—'**श्रूयतामल्प-बुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा।**'

ऋषि कहते हैं कि **शुभ-निशुम्भ के दूत** की बात सुनकर देवी '**गम्भीर अन्तः स्मिता**' (मन-ही-मन हँसती-सी गम्भीर) हो गई और तब उक्त वाक्य बोली। हँसी के भीतर गम्भीर भाव छिपा है। प्रतिज्ञा स्वाभाविक प्रेरणा-वश है, सोच-समझ की हुई नहीं है। जब होश सँभाला, तो इस भाव को लेकर ही। **पर-ब्रह्म** की **आद्या प्रकृति** स्वभाव से ही **अजेया** जो ठहरी! **पर-ब्रह्म** को जिसने **महामाया**-रूप से अभिभूत कर रखा है, वह क्या सोचकर ऐसी प्रतिज्ञा करती? वह हर स्वर में, अपने हर भाव में **अजेया-अपराजिता** है। आद्या **मूलाधार-शक्ति** के रूप में देखें या भौतिक जगत् को परिचालित करनेवाली **प्रकृति** के रूप में—वह **अजेया, अपराजिता** ही है।

शुम्भ-निशुम्भ ने **दूत** के मुख से उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर उसको वशीभूत करने के लिए अपनी सारी **आसुरी शक्ति** लगा दी, परन्तु स्वयं उनका ही प्रलय हुआ। युग-युगान्तरों से इस सृष्टि के भीतर ऐसे **आसुर-भावापन्न प्राणी** होते रहे हैं, जिन्होंने **विश्व-जननी परम प्रकृति** को अपने अधीन करने का हठ ठाना है, लेकिन हर बार एक ही नतीजा हुआ।

मानव आज दुःखी है, इसलिए कि वह अहङ्कार-वश '**प्रकृति**' को अपनी जननी न मानकर उसे अपने कौशल से जकड़कर दासी-रूप में रखना चाहता है। '**प्रकृति**' के ऊपर विजय पाने की आकांक्षा और दम्भ मनुष्य को अनर्थ की ओर ले जा रहा है। रोग, शोक, मनस्ताप, सङ्घर्ष और अन्त में अपने हाथों अपना घात—आज मनुष्य का, जो भोग्य का भाग्य बन रहा है, वह इसी **आसुरी अहङ्कार-वृत्ति** के कारण है।

'**प्रकृति**'—**विश्व-जननी** है। वैसे ही वह व्यक्ति की जननी और पालिका है। उसकी गोद में ही वह पैदा हुआ है, उसकी गोद में ही उसका यौवन और बुढ़ापा बीतता है और उसकी गोद में

ही उसको चिर विश्रान्ति मिलेगी। उसके बाहर मनुष्य को खड़े होने का भी कहीं कोई स्थान नहीं है। इसीलिए 'गीता' में भगवान् ने कहा है—'**प्रकृतिं यान्ति भूतानि, निग्रहं किं करिष्यति।**'

भूत मात्र को '**प्रकृति**' के पीछे चलना ही होता है, निग्रह क्या करेगा? हाँ, उसका अनुगमन कर उसके उच्च-से-उच्चतर भाव-स्तर में उठते चले जा सकते हैं क्योंकि वह तो माँ है न; अपनी सन्तान को ऊँचा-से-ऊँचा उठाने में ही उसका आनन्द है।

व्यक्तिगत देह में, विराट् भौतिक जगत् में, अन्तस्तल में अथवा विराट् में सब जगह वही **अपराजिता दुर्गा** शासन कर रही है। भौतिक विज्ञान हो अथवा पारमार्थिक ज्ञान—दोनों ही क्षेत्रों में केवल उसके ही भावों का मनन व अनुसरण किया जाता है। उसके नियमों को पलटने की ताकत व उसमें हस्तक्षेप करने की शक्ति किसी में नहीं है। वही सब शक्तियों का मूल स्रोत है।

अपराजिता दुर्गा की पूजा-विधि

भगवती अपराजिता की पूजा के सम्बन्ध में 'स्कन्द-पुराण' में यह निर्देश दिया है कि '**जब दशमी नवमी से संयुक्त हो, तो अपने कल्याण एवं विजय के लिए अपराजिता देवी की पूजा दशमी में उत्तर-पूर्व दिशा में अपराह्न में करे।**' 'धर्म-सिन्धु' में **अपराजिता-पूजा** की विधि संक्षेप में यों बताई है—**अपराह्न में गाँव के उत्तर-पूर्व में जाकर एक स्वच्छ स्थल पर गोबर से लीप दे। चन्दन से एक अष्ट-कोण यन्त्र बनाकर 'सङ्कल्प' करे।** यथा—'**मम स-कुटुम्बस्य क्षेम-सिद्ध्यर्थमपराजिता-पूजनं करिष्ये।**'

फिर उक्त **अष्ट-कोणात्मक यन्त्र में अपराजिता दुर्गा का आवाहन** कर उनके **दाईं ओर 'जया'** और **बाँईं ओर 'विजया' का आवाहन** कर **भगवती अपराजिता का ध्यान** करे—

नीलोत्पल-दल-श्यामां, भुजङ्गाभरणोज्ज्वलां। बालेन्दु-मौलि-सदृशीं, नयन-त्रितयान्विताम्।।
शङ्ख-चक्र-धरां देवीं, वरदां भय-शालिनीं। पीनोत्तुङ्ग-स्तनीं साध्वीं, बद्ध-पद्मासनां शिवाम्।।
अजितां चिन्तये देवीं, वैष्णवीमपराजितां। शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां, चन्द्र-कोटि-सुशीतलाम्।।
अभयां वर - हस्तां च, श्वेत - वस्त्रैरलंकृतां। नानाभरण - संयुक्तां, जयन्तीमपराजिताम्।।

ध्यान कर निम्न मन्त्रों से **नमस्कार** करे—

'ॐ अपराजितायै नमः, जयायै नमः, विजयायै नमः, क्रिया-शक्त्यै नमः, उमायै नमः।'

अपराजिता, जया और **विजया** की पूजा षोडश या पञ्चोपचारों से कर '**प्रार्थना**' करे—

चारुणा मुख-पद्मेन, विचित्र-कनकोज्ज्वला। जया देवी शिवा भक्त्या, सर्वान् कामान् ददातु मे।।
काञ्चनेन विचित्रेण, केयूरेण विराजिता। जय-प्रदा महा - माया, शिवा भावित - चेतसा।।
विजया च महा - भागा, ददातु विजयं मम। हारेण तु विचित्रेण, भास्वत् कनक - मेखला।
अपराजिता भद्र-रता, करोतु विजयं मम।।

इस प्रकार प्रार्थना कर देवी को '**पुष्पाञ्जलि**' अर्पित कर विदा करे। यथा—

इमां पूजां मया देवि! यथा-शक्ति निवेदितां। रक्षार्थं तु समादाय, व्रज स्व-स्थानमुत्तमम्॥

अर्थात् '**हे देवि! यथा-शक्ति जो पूजा मैंने अपने कल्याण के लिए की है, उसे स्वीकार कर आप सहर्ष विदा हों।**'

इसके बाद सभी लोग गाँव के **उत्तर-पूर्व में लगे शमी वृक्ष के पास जाकर उसकी पूजा करें।** शमी वृक्ष न हो, तो **अश्मन्तक वृक्ष की पूजा** करे।

इस सम्बन्ध में निम्न शास्त्रोक्ति उल्लेखनीय है—

दशम्यां च नरैः सम्यक्, पूजनीयापराजिता। मोक्षार्थं विजयार्थं च, पूर्वोक्त-विधिना नरैः॥

नवमी - शेष - युक्तायां, दशम्यामपराजिता। ददाति विजयं देवी, पूजिता जय-वर्धिनी॥

❊❊

२. 'चण्डी'

दुर्गा महा-शक्ति को '**चण्डी**' या '**चण्डिका**' भी कहते हैं। '**चण्ड**'-धातु या '**चडि**'-धातु जिसका कि अर्थ '**क्रोध**' है, उसके साथ 'ईप्' या 'ङीषि' प्रत्यय जोड़ देने से '**चण्डी**'-शब्द बनता है। इस शब्द का साधारणतया अर्थ हुआ कोप-मयी, क्रुद्धा। **दुर्गा महा-शक्ति** की यह संज्ञा क्यों प्रसिद्ध है? **ब्रह्म-रूपिणी माता दुर्गा** चण्डित्व लक्षणा, जिससे उग्रता का बोध होता है, क्यों परिलक्षित हैं? यही हमें देखना है।

'चण्डी'-नाम की निरुक्ति

शाक्त आगमों के अनन्यतम श्रेष्ठ रहस्य-विद् श्रीमद्-भास्कर राय ने सप्तशती की 'गुप्तवती टीका' के उपोद्‌घात-प्रकरण में '**चण्डी'-तत्त्व** की विशद् रूप से विवेचना की है। '**चण्डी**'-नाम के तात्पर्य-निरूपण के प्रसङ्ग में भास्करराय का कहना है—'**चण्डी-नाम पर-ब्रह्मणः पट्ट-महिषी देवता**'।

'**चण्डी**'-नाम—**पर-ब्रह्म की पट्ट-महिषी देवता** का वाचक है। 'चण्ड-भानु', 'चण्ड-वाद' इत्यादि स्थल में '**चण्ड**'-शब्द इयत्ता या **सीमा द्वारा अपरिच्छिन्न, असाधारण-गुण-शालित्व** के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इयत्ता कहने से **देश, काल** और **वस्तु-गत त्रि-विध परिच्छेद** का बोध होता है। इन **त्रि-विध परिच्छेदों से रहित पर-ब्रह्म** ही '**चण्ड**'-शब्द का अर्थ है। '**चण्ड**'-शब्द के बाद स्त्री-लिङ्ग में ङीष् प्रत्यय लगाने से '**चण्डी**'—पद सिद्ध होता है। अतएव '**चण्डी**' = **पर-ब्रह्म-महिषी** अर्थात् '**ब्रह्म-शक्ति**'।

विश्व-नियन्त्री, समष्टि-शक्ति-रूपिणी चण्डिका देवी

'**चण्डी**'—**इयत्ता-रहिता, अपरिमेया, असाधारण गुण-सम्पन्ना** हैं। वे ही **भयङ्कर कोप-**

युक्ता हैं। 'ब्रह्म-सूत्र' ने **ब्रह्म-शक्ति** को उद्यत वज्र के समान अत्यन्त भीषण कहा है। 'श्रुति' ने **ब्रह्म-शक्ति** के स्वरूप का वर्णन करते समय कहा है—'इसके भय से वायु बहती है, इसके भय से सूर्य उदित होता है, इसके भय से अग्नि, इन्द्र और पाँचवें मृत्यु अपने-अपने कार्य में धावित होते हैं।' (तैत्तिरीयोपनिषद् २।८)।

विश्व के नियन्त्रण के लिए दया-ममता के साथ-साथ क्रोध की भी आवश्यकता है। पालन-कार्य में जैसे दया, स्नेह, ममता आदि कोमल सम्पद् की जरूरत पड़ती है, वैसे ही पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड को सुसंयत, सुनियन्त्रित रखने के लिए कठोर-सम्पद् क्रोध भी आवश्यक है। इसी से **ब्रह्म-शक्ति दुर्गा—'चण्डी'**-नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका शील व स्वभाव ही है—**'दुर्वृत्तियों का शमन'**। प्राण-शक्ति-स्वरूपा दुर्गा **'चण्डी'**-रूप में तनिक-सा भी व्यतिक्रम सहन नहीं कर सकती। तुरन्त प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। यह नियम व्यष्टि व समष्टि-भाव में समान रूप से लागू है। व्यष्टि-भाव की प्रतिक्रिया हमको सद्यः व प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। चित्त की प्रसन्नता, शरीर की स्वस्थता से जीव—प्राण-शक्ति की प्रसन्नता का सद्यः अनुभव होता है। 'प्राण-शक्ति' के अप्रसन्न होने से मन और शरीर की व्याकुलता का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

परमेश्वरी चण्डिका की तीन प्रधान शक्तियाँ—महा-काली, महा-लक्ष्मी और महा-सरस्वती

परमेश्वरी चण्डिका के व्यष्टि-रूप में तीन शक्तियाँ प्रधान हैं—**१ महा-काली, २ महा-लक्ष्मी** और **३ महा-सरस्वती**। देवी भागवत (१।२।१९-२०) में उक्त वर्णन हुआ है—

निर्गुणा या सदा नित्या, व्यापिकाऽविकृता शिवा।
योग-गम्याऽखिलाधारा, तुरीया या च संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्विकी शक्ती, राजसी तामसी तथा।
महा-लक्ष्मीः सरस्वती, महा-काली ताः स्त्रियः॥

जो गुणातीता, नित्या, मङ्गल-मयी शक्ति सर्वदा सब स्थानों में अखण्ड अविकृत रूप से विराजती हैं; योगीन्द्र ऋषि-गण जिनको समाधि-काल में अपने हृदय-मन्दिर में तुरीय चैतन्य रूप से अनुभव करते हैं; जो अखिल जगत् की आश्रय हैं, उन महा-शक्ति के सत्त्व अंश से ही **महा-सरस्वती**, रजः अंश से **महा-लक्ष्मी** और तमः अंश से **महा-काली**—इन तीन स्त्री-मूर्तियों का आविर्भाव हुआ है।

'गुप्तवती टीका' के उपोद्घात में श्रीमद्-भास्कर राय ने कहा है—ज्ञान, इच्छा और क्रिया—इन तीन शक्तियों की समष्टि-भूता ब्रह्माभिन्न तुरीया देवी ही **'चण्डी'**-नाम से प्रसिद्ध हैं। व्यष्टि-भूता **ज्ञान**-शक्ति, **इच्छा**-शक्ति और **क्रिया**-शक्ति यथा-क्रम से **महा-सरस्वती, महा-काली** और **महा-लक्ष्मी** नाम से निर्दिष्ट हुई हैं। तन्त्रान्तर में उक्त वर्णन हुआ है—

महा-सरस्वती चिते, महा-लक्ष्मीः सदात्मके। महा-काल्यानन्द-रूपे, तत्त्व-ज्ञान-सुसिद्धये।
अनुसन्दघ्नहे चण्डि! वयं त्वां हृदयाम्बुजे।

महा-सरस्वती—चिति-रूपा, **महा-लक्ष्मी**—सद्-रूपा और **महा-काली**—आनन्द-रूपा है। हे **सच्चिदानन्द-मयि, समष्टि-भूते चण्डिके!** तत्त्व-ज्ञान लाभ के निमित्त हम हृदय-पद्म में तुम्हारा ध्यान करते हैं।

गुप्तावतार बाबा-श्री ने भी **महा-शक्ति चण्डिका** का वर्णन इस प्रकार किया है—

जयति श्री चण्डिका

जयति श्री चण्डिका चण्डि चण्डीश्वरी, चण्ड-कर्मा महा-शक्ति-धर्मा।
गुण-त्रयाधार त्रय-गुण परामर्षिणी, कर्षिणी स्तम्भिनी दिव्य वर्मा॥१॥
मारिणी मोहिनी शुम्भ-संहारिणी, रक्त-बीजादि भय-हारि कर्मा।
जयति विश्वेशि सुर-रक्षिणी पालिनी, जन्म-दायिनि विधायिनि विकर्मा॥२॥
शोषिणी प्लाविनी शक्ति पर-देवता, अगण गुण कर्म-कालिनि अकर्मा।
विश्व-विश्वेश्वरी सर्व-सर्वेश्वरी, एक आनन्द-दायिनि सुशर्मा॥३॥
रण-धरा जय-प्रदायिनि परात्पर-परा, विश्व क्षय-कर्म पर-शान्ति धर्मा।
भय-भया भय-वहा पूर्ण करुणा-करा, 'मोति' भव-तार गुण-सार-कर्मा॥४॥

पद्म-पुराण में वर्णित 'चण्डी'-पूजा का फल

भीष्म जी ने पूछा—**चण्डिका** के अनुग्रह से अवशिष्ट दैत्य रसातल में चले गए, अत: **चण्डिका-पूजन** का फल वर्णन कीजिए। **पुलस्त्य जी** ने कहा कि **चण्डिका-पूजन** से स्वर्ग के भोग-सुख के बाद मोक्ष मिलता है। जो **चण्डिका का पूजन** प्रति-दिन करता है, उसका पुण्य साक्षात् **ब्रह्मा** भी वर्णन नहीं कर सकते। जो देवी-पूजन प्रति-दिन नाना पुष्प, धूप-दीपादि से करता है, वही योगी, मुनि व लक्ष्मीवान् है, उसके हाथ में ही मुक्ति है।

जो भगवती को **पूर्णिमा** व **नवमी** में क्षीर से स्नान करवाता है, उसे वाजपेय यज्ञ के समान फल मिलता है। सम्पूर्ण पर्व-कालों में पूजन करनेवाला विमान में बैठ ब्रह्म-लोक में जाता है। जो फल चार मास **दुर्गा-पूजन** से मिलता है, वही **कार्त्तिक की नवमी** में पूजन करने से मिलता है। **आश्विन शुक्ल नवमी** में **देवी-पूजन** करने से हजार अश्वमेध व सौ राजसूय यज्ञ के समान फल मिलता है। प्रत्येक मास में **नवमी** के दिन पूजन करने से छ: मास का फल मिलता है। जो **आश्विन मास** में एक दिन-रात ताम्र-पात्र की सूक्ष्म धारा से **घृत से देवी का अभिषेक** करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

कार्त्तिक पूर्णिमा युक्त सोमवार को देवी-पूजन करने से अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल प्राप्त होकर सूर्य-लोक की प्राप्ति होती है। **आषाढ़ी पूर्णिमा** को उपवासी रह **देवी-पूजन** करने से अश्वमेध यज्ञ के समान फल होता है। बिल्व-पत्रों की माला तथा गुग्गुल की माला से **देवी-पूजन** करने से अथवा बिल्व-वृक्ष के पत्तों से पूजा करने से राजसूय यज्ञ के समान फल मिलता है।

देवी-पूजन में सब पुष्पों से उत्तम नील कमल बतलाया गया है। नाना प्रकार के पुष्पों से **चण्डी-पूजा** करने से नाना लोकों की प्राप्ति होती है। देवी-मन्दिर में नृत्य, गीत और वादित्र करने से देवी-लोक की प्राप्ति होती है। जो एक दिन भी देवी को पञ्च-गव्य से स्नान कराता है, उसे सुरभि-लोक की प्राप्ति होती है। उत्तरायण में उपवासी रह **देवी-पूजा** करने से बहु पुत्र व बहु धन की प्राप्ति होती है। **विषव (तुला-मेष संक्रान्ति)** में उपवास कर **देवी-पूजन** करने से मनुष्य शक्तिमान् व बहु-पुत्रोंवाला एवं बलवान् होता है। **चन्द्र-सूर्य ग्रहण** में उपवास कर **दुर्गा-पूजन** करने से पुत्र की प्राप्ति होती है।

दुर्गा का दर्शन पवित्र है। दर्शन से प्रणाम, वन्दन से स्पर्श, स्पर्श से पूजन, पूजन से लेपन, लेपन से तर्पण और तर्पण से मांस-दान अधिक फल-प्रद है। मांस में महिष व अज का ही विधान है, परन्तु 'मार्कण्डेय-पुराण' में बताया गया है कि सभी में अहिंसा की भावना रख **देवी की पूजा** करना श्रेष्ठ है।

पुलस्त्य जी ने कहा कि देवों ने **ब्रह्मा** से **दुर्गा-पूजन** के विषय में पूछा, तब **ब्रह्मा जी** कहने लगे कि शम्भु, विष्णु, कुबेर, विश्वेदेव, वायु, वसु, अश्विनीकुमार, वरुण, अग्नि, सूर्य, सोम, ग्रह, वारिज, पितर, पिशाच, गुह्यक और भूत-योनि क्रम से मन्त्र-शक्ति-मयी, इन्द्र-नील-मयी, हेम-मयी, रौप्या, पित्तल से बनी हुई, कांस्य की, पार्थिवी, स्फाटिकी, रत्न-मयी, ताम्रा, मुक्ता-फल-मयी, प्रवाल-मयी, वारिजा, त्रपुसी-मयी, लोह-मयी, त्रि-लोहिनी और वज्र-लोह-मयी देवी का पूजन करते हैं। तुम परम गति को चाहते हो, तो **मणि-मयी देवी का पूजन** करो, जिससे मनोऽभिलषित सिद्धि प्राप्त होगी। उस **भगवती प्रतिमा** को नाना पाद्यादिकों से स्नान करावे, नाना पुष्प चढ़ावे व पुष्प-गृह बनावे।

जो मनुष्य **नवमी** व **पर्व-काल में पूजन** करता है, वह पुष्प-युक्त विमान में बैठकर **'चण्डी'-लोक** में अक्षय काल पर्यन्त सुखी रहता है। देवी के लिए सफेद अगरु देने से गो-सहस्र दान करने के समान फल होता है। **चण्डिका** का विधान से पूजन कर **'दुर्गां शिवां शान्तिकरीं'** आदि स्तोत्र का पठन करे। इसे जो सुनता व पढ़ता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर **दुर्गा भगवती महा-माया** के लोक में पूजित होता है।

❊❊

३. महा-माया

पूज्य स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती जी अपने वङ्ग-भाषा के ग्रन्थ '**जप-सूत्रं**' के प्रथम अध्याय में '**महा-माया**'—शब्द की व्याख्या निम्न सूत्र से करते हैं—

सति तत्त्व-सत्त्वत्वे सर्वादि-शक्तिमत्ता महा-माया। सा भगवत्ता पर-ब्रह्मणि॥१

अर्थात् तत्त्व एवं सत्त्व-स्वरूप में रहकर सर्व-रूपा सर्वेशी इत्यादि होने के लिए जो शक्तिमत्ता है, वही '**महा-माया**' कहलाती है। यही **पर-ब्रह्म** की भगवत्ता है।

सूत्र के '**सर्वादि**' के **सर्व** का अर्थ—**सत्ता, शक्ति, छन्द, आकृति, पाद, मात्रा, कला, काष्ठा, वाक्, अर्थ, प्रत्यय, क्रिया, कारक, फल**—इत्यादि है। '**आदि**' का अर्थ **प्रभृति** तो है ही, साथ ही **आदि = आद्या** अर्थात् **सकल की आद्या-शक्ति** भी है।

'**ॐ तत् सत्**' इस ब्राह्म-वाचक मन्त्र के '**ब्राह्मी तनु**' एवं '**शाक्ती तनु**'—दोनों **महा-माया** में सम्मिलित हैं। **महा-माया** के '**महा**' द्वारा **ब्राह्मी तनु** एवं '**अमाया**' द्वारा **शाक्ती तनु** का बोध होता है। प्रकारान्तर से **ब्रह्म की भगवत्ता—महा-माया** ही साक्षात् **ब्रह्म-मयी** '**माँ**' है। **महा = महा-महिमा-मयी। मा + या = जो माँ** है।

'**माँ**'-नाम **एकाक्षर महा-मन्त्र** है। केवल मातृ-सम्बोधन का सूचक नहीं है। **१ अ, २ उ, ३ म, ४ नाद, ५ बिन्दु, ६ कला** एवं **७ कलातीत**—सप्त-सिन्धु इस एक माँ में समाए हुए हैं।

ब्रह्मणो भिद्यते नैव, मूर्त्तामूर्त्तात् कथञ्चन।
अविशिष्टाद् विशिष्टाद् वा, निष्कलाद् सकलादपि।
नाप्यधस्तादधिष्ठानादाभासाद् भासकान्न च॥

'**ब्रह्म**' के सम्पर्क में **ब्राह्मी तनु** निर्व्यूढ समग्रत्व **महा-माया** में है। इसलिए इसके **अमूर्त ब्रह्म** होने में किसी भी मत से सन्देह नहीं है। '**निर्विशेष-सविशेष**', '**निष्कल-सकल**', '**अध्ययन-अधिष्ठान**', '**आभास-भासक**' होने में भी मत-भेद नहीं है। यही है एक परमाश्चर्य-जनक सर्वत्व वा समग्रत्व, जिसमें सब है एवं जो स्वयं ही सब कुछ है—

यच्च किञ्चित् क्वचिद् वस्तु, सदसद् वाऽखिलात्मिके! तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वम्॥१
न जीवाद् भिद्यते कुत्र, व्यष्टितो वा समष्टितः। मुक्ताद् बद्धान्मुमुक्षोर्वा, विश्रुतश्चानुतोऽपि वा॥२
अव्यक्तादपि च व्यक्ताज्जगतो नैव भिद्यते। न रेणोर्वा विराजो वा, हेतोर्वा हेतुकादपि॥३
अन्योन्याभाव-मात्रस्याभावस्य भाव-रूपता। अविना-भाव-रूपेण, यत्रैव परिनिष्ठिता॥४

जीव एवं जगत् (**शाक्ती तनु**) के सम्पर्क में **महा-माया** जीव होकर भी किसी प्रकार भिन्न नहीं है। व्यष्टि (विश्व-तैजसादि) होकर भी नहीं, समष्टि (विराट् हिरण्य-गर्भादि) होकर भी नहीं। बद्ध, मुमुक्षु जीव-रूप में इसने अपने आपको स्वयं ही भुला रखा है—'**भ्रान्ति-रूपेण संस्थिता**'

और स्वयं ही अपने आपको जानती भी है (चेतना-चिति)। वही अपने आप में विभुत्व-अणुत्व समाहित किए हुए है। **'बिन्दु'-माया** यही है। शून्यता एवं पूर्णता जहाँ मिलते हैं, वही **'बिन्दु'** है। **'बिन्दु-वासिनी' महा-माया** एकाधार से **'सर्वनाशी'** एवं **'सर्वा'** है। निखिल विचित्र अभिव्यक्ति-रेखा यहाँ पर शून्यता को प्राप्त होती है और यहीं पर निखिल **'कलना'**-शक्ति की गाढ़ता की पराकाष्ठा (पूर्णता) भी है। जगत् का जो अव्यक्त (असत्) भाव है, उससे **महा-माया** भिन्न नहीं है, किन्तु जगत् के व्यक्त भाव से भी वह भिन्न नहीं है। क्षुद्र रेणु से भी अभिन्ना एवं विराट् से भी अभिन्ना। रेणु की नाभि में जो **'बिन्दु-वासिनी'** है, उसी ने अपने संख्यातीत **'अर'** और सीमा-हीन **'नेमि'** को गूँथकर ह्रस्व करके उसको इस रूप में दिखाया है। यही है **'महा-माया'** की माया। चमत्कार यदि कुछ है, तो यही है। यही रेणु दिखाता है—**महा-शक्ति का चतुर्व्यूह**। यथा—

१ महा-'कलन'-शक्ति-रूपा—**'महा-काली'**, २ महा-'बिन्दु'-शक्ति-रूपा—**'बिन्दु-वासिनी महेश्वरी'**, ३ महा-'नाद'-शक्ति-रूपा—**'महा-लक्ष्मी'** (रेणु-मध्य में स्थिता अनवद्या श्री) अर्थात् पूर्ण सामञ्जस्य एवं ४ अकुण्ठिता 'ख्याति'-रूपा—**'महा-सरस्वती'** अर्थात् पूर्ण व्यक्तीकरण।

चतुर्व्यूहा महा-माया उक्त चारों ही भावों में नित्य-पूर्णा है। कालादि निखिल कलन की **'आद्या'** के रूप में वह **नित्य-पूर्णा** है। निखिल के बिन्दु में अधिष्ठात्री-रूप से वह **नित्य-पूर्णैश्वर्य-मयी** है। निखिल की व्याप्ति आकृति, कृति और छन्द—इस त्रयी के अनवद्य सौष्ठव और सुषमा की अनुपम माधुरी के रूप में वह **परिपूर्णा** भी है। निखिल के प्रकाश एवं बोध में परिसीमा-रूप से वह **नित्य-पूर्णा ख्याति** है। इन चारों में से किसी भी रूप में वह **'महा-अमेया'** अर्थात् **नितान्त अज्ञेया, 'मेया'** अर्थात् ज्ञेया नहीं होती।

'महा-माया' मानो अपने आप से प्रश्न करती है एवं स्वयं ही उत्तर देती है—

१ समस्त की परम **'आद्या' मूल-रूपा** कौन है?—**'मैं महा-काली।'**

२ सकल की **महा-बिन्दु-अधिष्ठिता परम अधीश्वरी** कौन है?—**'मैं माहेश्वरी'**।

३ सकल के **आकृति-क्रिया-छन्द में सौष्ठव, 'मधु', 'रस'** किसने दिया?—**'मुझ महा-लक्ष्मी'** ने।

४ सकल का **परिपूर्ण सत्य-बोध, ख्याति-निवेदन और आस्वादन** किसमें है?—'मुझ **'महा-सरस्वती'** में।

उक्त नित्य-पूर्णा चतुर्व्यूहा **महा-माया** को ही **'क्रीं ह्रीं श्रीं ऐं'** महा-बीज-चतुष्टय के रूप में ध्यान किया जाता है।

❋❋

४. मूल प्रकृति-रूपा दुर्गा

भगवती दुर्गा—वैष्णव और शैव आदि सभी के द्वारा नित्य उपासना करने योग्य हैं। ये **मूल प्रकृति-रूपा** हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली इनका नवाक्षर मन्त्र, मन्त्रों में उत्तम '**नवार्ण-मन्त्र**' कहलाता है।

श्रीदेवी भागवत, स्कन्ध ५ के '**श्रीदुर्गा-विधान**' में कहा गया है कि **श्रीदुर्गा**—'**सर्व-बुद्ध्यधि-देवी (सबकी बुद्धि की अधि-देवी') 'अन्तर्यामि-स्वरूपिणी**' और '**मूल-प्रकृति-रूपा सा, सृष्टि-स्थित्यन्त-कारिणी**'—मूल प्रकृति-रूपा, सृष्टि करनेवाली, स्थिति और अन्त करनेवाली शक्ति हैं।'

'**दुर्ग-सङ्कट-हंत्रीति, दुर्गेति प्रथिता भुवि**' दुर्गा—विशाल सङ्कट को नाश करनेवाली हैं, अत: '**दुर्गा**'-नाम से ख्यात हैं।

'**देवी-भागवत**' में ही **श्रीदुर्गा** के लिए एक प्रसङ्ग और आया है। देखिए, स्कन्ध ९, अध्याय २। यथा—.....'**प्रकृति**' नित्य है, जो '**ब्रह्म**' की लीला और सनातनी है। जैसे अग्नि में जलानेवाली शक्ति, चन्द्रमा और कमल में शोभा-रूपा शक्ति, सूर्य में प्रभा निरन्तर युक्त रहती है—कभी भिन्न नहीं होती, वैसे ही '**ब्रह्म**' में '**प्रकृति**' सदा लीन रहती है। जैसे सुनार बिना सुवर्ण कुण्डलादि नहीं बना सकता, कुम्हार बिना मिट्टी घटादि नहीं बना सकता, वैसे ही '**प्रकृति**' बिना '**आत्मा**' सृष्टि करने में समर्थ नहीं है। '**प्रकृति**'—सर्व-शक्ति-स्वरूप है और उसी से '**आत्मा**'—शक्ति-मान् कहलाता है। '**श**'-शब्द ऐश्वर्य-वाचक और '**क्ति**'-शब्द पराक्रम-वाची है। ज्ञान-समृद्धि-सम्पत्ति-यश-बल आदि को '**भग**' कहते हैं। जिसमें '**शक्ति**' व '**भग**' हो, उसको '**भगवती**' कहते हैं। '**भगवती**' ही '**शक्ति**' कहलाती हैं और '**शक्ति**' से युक्त **आत्मा—भगवान्** कहलाता है।.....

'**श्रीदेवी-भागवत**' के उपर्युक्त विवरण से यह प्रमाणित होता है कि **श्रीदुर्गा—विष्णु-माया** एवं **सनातनी** हैं। सम्पूर्ण देव-देवियाँ इन्हीं से प्रगट हैं। **श्रीदुर्गा—बीज-रूपा मूल-प्रकृति ईश्वरी** हैं।

अब **श्रीदुर्गा** के विषय में **श्रीदुर्गा सप्तशती** के आधार पर विवेचन करें। **श्रीदुर्गा सप्तशती, एकादश अध्याय** में **भगवती** द्वारा **धूम्र-लोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्त-बीज, निशुम्भ-शुम्भ** आदि के मारने के बाद निष्कण्टक होने पर देवताओं ने उनकी स्तुति की।

स्तुति में देवताओं ने देवी से कहा—'हे देवि! प्रसन्न होओ! जिस प्रकार इस समय असुरों का वध करके तुमने शीघ्र ही हम लोगों की रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें असुरों के भय से बचाओ।

देवी ने तब देवताओं से कहा—देवताओं! मैं वर देने को तैयार हूँ। तुम्हारे मन में जिस बात की कामना हो, वर माँगो। संसार के लिए उप-कारक वह वर मैं अवश्य दूँगी।

देवताओं ने वर माँगा—हे सर्वेश्वरि! तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को

शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो।

उत्तर में देवी ने (उस काल के) भविष्य के अनेक उपद्रवों तथा बाधाओं का उल्लेख कर बाधाओं के शमनार्थ विविध नामों से युक्त अपने प्रादुर्भाव का वर्णन किया।

श्रीदुर्गा सप्तशती में तीन चरितों—**१ महा-काली, २ महा-लक्ष्मी** और **३ महा-सरस्वती** का वर्णन है। समग्र चरित को '**श्रीदुर्गा-सप्तशती**' कहा गया है क्योंकि ये सभी '**श्रीदुर्गा**' के ही रूप हैं। **श्रीदुर्गा सप्तशती** के २ से ४ अध्याय तक **महा-लक्ष्मी चरित** है। इस चरित में महिषासुर के देवी द्वारा मारे जाने पर देवताओं ने भगवती की '**दुर्गा**'-नाम से ही प्रार्थना की है। देखिए, प्रार्थना का ११ वाँ और १७वाँ मन्त्र—

मेधाऽसि देवि! विदिताऽखिल-शास्त्र-सारा, दुर्गाऽसि दुर्ग-भव-सागर-नौर-सङ्गा।
श्रीः कैटभारि-हृदयैक-कृताधिवासा, गौरी त्वमेव शशि-मौलि-कृत-प्रतिष्ठा।।११

दुर्गे! स्मृता हरसि भीतिमशेष - जन्तोः, स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव-शुभां ददासि।
दारिद्र्य-दुःख-भय-हारिणि! का त्वदन्या? सर्वोपकार-करणाय सदाऽऽर्द्र - चित्ता।।१७

इसी प्रकार **श्रीदुर्गा सप्तशती** के अध्याय ५ से ११ तक **महा-सरस्वती चरित** है। इसमें भी निशुम्भ, शुम्भ आदि दैत्यों से त्राण पाने के लिए देवताओं ने भगवती की प्रार्थना में '**दुर्गा**'-नाम से प्रार्थना की है। देखिए, अध्याय ५, मन्त्र १२ वाँ और अध्याय ११, मन्त्र २४ वाँ—

दुर्गायै दुर्ग-पारायै, सारायै सर्व-कारिण्यै। ख्यात्यै तथैव कृष्णायै, धूम्रायै सततं नमः।।१२
सर्व-स्वरूपे सर्वेशे, सर्व-शक्ति-समन्विते!।। भयेभ्यस्त्राहि नो देवि! दुर्गे देवि! नमोऽस्तु ते।।२४

'**सप्तशती**' के प्रथम चरित **महा-काली-चरित** में '**दुर्गा**' का नाम नहीं आया है तथापि **महा-काली** या **काली** के लिए भी '**दुर्गा**' का नाम आया है। **मधु-कैटभ** के मारनेवाले, योग-निद्रा-आश्रित **भगवान् विष्णु** के हृदय में निवास करनेवाली **महा-माया—महा-काली** भी '**दुर्गा**' ही हैं।

'**अर्गला स्तोत्र**' में भी '**काली**' के लिए '**दुर्गा**'-नाम आया है। यथा—

जयन्ती मङ्गला काली, भद्र-काली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री, स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते।।

संक्षेप में, **श्रीदुर्गा** के अनेक नाम हैं तथा अनेक रूप हैं, जिन्हें समय-समय पर उन्होंने धारण किया है। उपासक **द्वि-भुजी, अष्ट-भुजी, दश-भुजी, अष्टादश-भुजी, सहस्त्र-भुजी, अपराजिता, चण्डिका, महा-माया** एवं **प्रकृति-रूपा** आदि अनेक-रूपों में इनकी उपासना करते हैं। इनकी उपासना, ध्यान-पूजार्चनादि विभिन्न तन्त्र-शास्त्रादि के आधार पर भिन्न-भिन्न क्रियाओं द्वारा की जाती है। साधारण स्तोत्रादि से भी आराधना होती है।

❋ ❋ ❋

श्रीदुर्गा-तत्त्व

(श्रीदेव्यथर्वशीर्षोक्त)

सभी देव-देवी के समीप पहुँच कर, नम्रता से प्रार्थना करने लगे कि—हे देवि! तुम कौन हो?

देवी ने कहा—मैं **ब्रह्म-स्वरूप** हूँ। मुझसे **प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप** और **असद्रूप जगत्** उत्पन्न हुआ है। मैं **आनन्द** और **अनानन्द-रूपा** हूँ। मैं **विज्ञान** और **अविज्ञान**-रूपा हूँ। अवश्य जानने योग्य **ब्रह्म** और **अब्रह्म** भी मैं ही हूँ। **पञ्चीकृत** और **अपञ्चीकृत महा-भूत** भी मैं ही हूँ। यह सारा **दृश्य जगत्** मैं ही हूँ।

वेद और **अवेद** भी मैं हूँ। **विद्या** और **अविद्या** मैं, **अजा** और **अनजा** भी मैं, **नीचे-ऊपर, अगल-बगल** भी मैं ही हूँ।

मैं **रुद्रों** और **वसुओं** के रूप में सञ्चार करती हूँ। मैं **आदित्यों** और **विश्वेदेवों** के रूप में फिरा करती हूँ। मैं दोनों **मित्रावरुण** का, **इन्द्राग्नि** का और दोनों **अश्विनीकुमारों** का पोषण करती हूँ।

मैं **सोम, त्वष्टा, पूषा** और **भग** को धारण करती हूँ। त्रैलोक्य पर आक्रमण करने के लिए विस्तीर्ण पाद-क्षेप करनेवाले **विष्णु, ब्रह्मदेव** और **प्रजापति** को मैं ही धारण करती हूँ।

देवों को उत्तम हवि पहुँचानेवाले और सोम-रस निकालनेवाले यजमान के लिए **हवि-द्रव्यों से युक्त धन** धारण करती हूँ। मैं **सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी**, उपासकों को **धन देनेवाली, ब्रह्म-रूप** और **यज्ञार्हों (यजन करने योग्य देवों) में मुख्य** हूँ। मैं आत्म-स्वरूप पर—आकाशादि का निर्माण करती हूँ। मेरा स्थान आत्म-स्वरूप को धारण करनेवाली बुद्धि-वृत्ति में है। जो इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्ति लाभ करता है।

तब देवों ने स्तुति की—देवी को नमस्कार है। बड़े-बड़ों को अपने-अपने कर्त्तव्य में प्रवृत्त करनेवाली **कल्याण-कर्त्री** को सदा नमस्कार है। गुण-साम्यावस्था-रूपिणी **मङ्गल-मयी देवी** को नमस्कार है। नियम-युक्त होकर हम उन्हें प्रणाम करते हैं।

उन **अग्नि के से वर्णवाली, ज्ञान से जगमगानेवाली, दीप्ति-मती,** कर्म-फल-प्राप्ति के हेतु सेवन की जानेवाली **दुर्गा-देवी** की शरण में हम हैं। **असुरों का नाश करनेवाली देवी!** तुम्हें नमस्कार है।

प्राण-रूप देवों ने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणी को उत्पन्न किया, उसे अनेक प्रकार से प्राणी बोलते हैं। वह कामधेनु-तुल्य आनन्द-दायक और अन्न तथा बल देनेवाली **वाग्-रूपिणी भगवती** उत्तम स्तुति से सन्तुष्ट होकर हमारे समीप आवे।

काल का भी नाश करनेवाली, वेदों द्वारा स्तुत हुई विष्णु-शक्ति, स्कन्द-माता, सरस्वती, देव-माता अदिति और **दक्ष-कन्या, पाप-नाशिनी कल्याण-कारिणी भगवती शिवा** को हम प्रणाम करते हैं।

हम **महा-लक्ष्मी** को जानते हैं और उन **सर्व-शक्ति-रूपिणी** का ही ध्यान करते हैं। वह देवी हमें उस विषय (ज्ञान-ध्यान) में प्रवृत्त करें।

हे **दक्ष**! आपकी जो कन्या **अदिति** है, वह प्रसूता हुई और उनके **स्तुत्यर्ह** तथा **मृत्यु-रहित देव** उत्पन्न हुए।

काम (**क**), योनि (**ए**), कमला (**ई**), वज्र-पाणि इन्द्र (**ल**), गुहा (**ह्रीं**)। **ह, स**—२ वर्ण, मातरिश्वा—वायु (**क**), अभ्र (**ह**), इन्द्र (**ल**), पुनः गुहा (**ह्रीं**)। **स, क, ल**—३ वर्ण और माया (**ह्रीं**)—'**कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं**'—यह सर्वात्मिका जगन्माता की मूल-विद्या है और यह ब्रह्म-रूपिणी है।

(शिव-शक्त्यभेद-रूपा, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरी-रूपा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासकात्मिका, सम-रसीभूत शिव-शक्त्यात्मक ब्रह्म-स्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्व-तत्त्वात्मिका, महा-त्रिपुर-सुन्दरी—यही इस मन्त्र का भावार्थ है। यह मन्त्र सब मन्त्रों का मुकुट-मणि है। मन्त्र-शास्त्र में **पञ्च-दशी कादि श्रीविद्या** के नाम से प्रसिद्ध है।)

यह **परमात्मा की शक्ति** हैं। यह **विश्व-मोहिनी** हैं। **पाश, अंकुश, धनुष** और **वाण** धारण करनेवाली हैं। यह '**श्रीमहा-विद्या**' हैं। जो ऐसा जानता है, वह शोक को पार कर जाता है।

हे भगवती, तुम्हें नमस्कार है। हे माता! सब प्रकार से हमारी रक्षा करो।

वही **अष्ट वसु** है; वही **एकादश रुद्र** है; वही **द्वादश आदित्य** है; वही सोम-पान करनेवाले और न करनेवाले **विश्वेदेव** है; वही **यातुधान** (एक प्रकार के राक्षस), **असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष** और **सिद्ध** है; वही **सत्त्व-रज-तम** है; वही **ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-रूपिणी** है; वही **प्रजा-पति-इन्द्र-मनु** है; वही **ग्रह, नक्षत्र** और **तारा** है; वही **कला-काष्ठादि काल-रूपिणी** है। **पाप नाश करनेवाली, भोग-मोक्ष देनेवाली, अन्त-रहित, विजयाधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेने योग्य, कल्याण-दात्री** और **मङ्गल-रूपिणी** उन देवी को हम सदा प्रणाम करते हैं।

वियत्—आकाश (**ह**) तथा '**ई**'-कार से युक्त, वीति-होत्र—अग्नि (**र**) सहित, अर्ध-चन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवी का बीज (**ह्रीं**) है, वह सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस **एकाक्षर-ब्रह्म** का ऐसे यति ध्यान करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्द-पूर्ण हैं और जो ज्ञान के सागर हैं।

('**ह्रीं**'-मन्त्र देवी-प्रणव है। **ॐकार** के समान ही यह **प्रणव** भी व्यापक अर्थ से भरा हुआ है। संक्षेप में इसका अर्थ **इच्छा-ज्ञान-क्रियाधार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द समरसी-भूत शिव-शक्ति-स्फुरण** है।)

वाक् या वाणी (**ऐं**), माया (**ह्रीं**), ब्रह्मसू—काम (**क्लीं**), इसके आगे छठा व्यञ्जन अर्थात् च्, वही वक्त्र अर्थात् आकार से युक्त (**चा**), सूर्य (**म**), 'अवाम श्रोत्र'—दक्षिण कर्ण (**उ**) और बिन्दु अर्थात् अनुस्वार से युक्त (**मुं**), टकार से तीसरा ड, वही नारायण अर्थात् 'आ' से मिश्र (**डा**), वायु (**य**), वही अधर अर्थात् 'ऐ' से युक्त (**यै**) और '**विच्चे**' यह नवार्ण-मन्त्र—'**ऐं ह्रीं क्लीं**

चामुण्डायै विच्चे'—उपासकों को आनन्द और ब्रह्म-सायुज्य देनेवाला है।

(**नवार्ण मन्त्र का अर्थ**—हे चित्स्वरूपिणी महा-सरस्वती! हे सद्रूपिणी महा-लक्ष्मी! हे आनन्द-रूपिणी महा-काली! ब्रह्म-विद्या पाने के लिए हम सब समय तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती-स्वरूपिणी चण्डिके! तुम्हें नमस्कार है। अविद्या-रूप रज्जु की दृढ़ ग्रन्थि को खोलकर मुझे मुक्त करो।)

हृत्कमल के मध्य में रहनेवाली, प्रातः-कालीन सूर्य के समान प्रभावाली, पाश और **अंकुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपवाली, वरद** और **अभय-मुद्रा धारण किए हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रवाली, रक्त-वस्त्र पहननेवाली, भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवी** को मैं भजता हूँ।

महा-भय का नाश करनेवाली, महा-सङ्कट को शान्त करनेवाली और **महान् करुणा की साक्षात् मूर्ति** तुम महा-देवी को मैं नमस्कार करता हूँ।

जिसका स्वरूप ब्रह्मादिक नहीं जानते, इसलिए जिसे '**अज्ञेया**' कहते हैं; जिसका अन्त नहीं मिलता, इसलिए जिसे '**अनन्ता**' कहते हैं; जिसका लक्ष्य देख नहीं पड़ता, इसलिये जिसे '**अलक्ष्या**' कहते हैं; जिसका जन्म समझ में नहीं आता, इसलिए जिसे '**अजा**' कहते हैं; जो अकेली ही सर्वत्र है, इसलिए जिसे '**एका**' कहते हैं; जो अकेली ही विश्व-रूप में सजी हुई है, इसलिए जिसे '**नैका**' कहते हैं। वह इसीलिए '**अज्ञेया**', '**अनन्ता**', '**अजा**', '**एका**' और '**नैका**' कहलाती है।

सब मन्त्रों में '**मातृका**'—मूलाक्षर-रूप से रहनेवाली, शब्दों में **अर्थ-रूप** से रहनेवाली, ज्ञानों में '**चिन्मयातीता**', शब्दों में '**शून्य-साक्षिणी**' तथा जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वह '**दुर्गा**' नाम से प्रसिद्ध हैं।

उन **दुर्विज्ञेया, दुराचार-नाशिनी** और **संसार-सागर से तारनेवाली** '**दुर्गा देवी**' को संसार से डरा हुआ मैं नमस्कार करता हूँ।

॥ फल-श्रुति ॥

उक्त **अथर्व-शीर्ष** का जो अध्ययन करता है, उसे **पाँचों अथर्व-शीर्षों** के जप का फल प्राप्त होता है। इस **अथर्व-शीर्ष** को न जानकर जो **प्रतिमा-स्थापन** करता है, वह सैकड़ों लाख जप करके भी **अर्चा-सिद्धि** नहीं प्राप्त करता। **अष्टोत्तर-शत (१०८) जप** (इत्यादि) इसकी **पुरश्चरण-विधि** है। जो इसका **दस बार पाठ** करता है, वह उसी क्षण पापों से मुक्त हो जाता है और **महा-देवी** के प्रसाद से बड़े दुस्तर सङ्कटों को पार कर जाता है।

इसका **सायं-काल में अध्ययन** करनेवाला दिन में किए हुए पापों का नाश करता है, **प्रातः-काल में अध्ययन** करनेवाला रात्रि में किए हुए पापों का नाश करता है, **दोनों समय अध्ययन** करनेवाला निष्पाप होता है। **मध्य-रात्रि में तुरीय-सन्ध्या के समय जप** करने से '**वाक्-सिद्धि**' प्राप्त होती है। नई प्रतिमा के समक्ष जप करने से '**देवता-सान्निध्य**' प्राप्त होता है। **भौमाश्विनी (अमृत-सिद्धि) योग** में महा-देवी की सन्निधि में जप करने से महा-मृत्यु से तर जाता है। इस प्रकार यह **अविद्या-नाशिनी ब्रह्म-विद्या** है।

❋ ❋ ❋

श्रीदुर्गा-मन्त्र-तत्त्व

भगवती दुर्गा के मन्त्रार्थ का संक्षिप्त दिग्दर्शन

भगवती दुर्गा के ध्यान अनेक हैं। ऐसा अनिवार्य है क्योंकि **'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।'** इसी प्रकार मन्त्र भी असंख्य हैं। ये मन्त्र **देवी के शाब्दिक रूप वा सूक्ष्म रूप** हैं। इन्हीं के आधार पर **ध्यान** व **स्थूल रूप** की कल्पना है। ये **ध्यान—निर्गुण** और **सगुण** दोनों ही रूपों के द्योतक हैं। इन सबका ज्ञाता कोई भी नहीं है और सभी के ज्ञान की आवश्यकता भी नहीं है। आवश्यकता है प्रधान मन्त्र से सम्बन्धित ध्यान की, जिसके मनन एवं निदिध्यासन से परमार्थ का साधन होता है। परन्तु यह निर्णय करना कठिन है कि अमुक ध्यान प्रधान है और सब गौण हैं। कारण सबका मत एक नहीं। कोई एक ध्यान को प्रधान मानता है, तो कोई उसे अपने दृष्टि-कोण के अनुसार अप्रधान ही बताता है। ऐसी दशा में कोई भी निर्णय सर्व-सम्मत नहीं हो सकता। अतएव प्रचलित मतों का ही मन्थन कर सिद्धान्त का प्रतिपादन करना पड़ता है।

शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार **भगवती दुर्गा** के श्रौत उपासना-क्रम के अतिरिक्त दो प्रधान उपासना-क्रम हैं—१ शुद्ध तन्त्रोक्त और २ तन्त्र और स्मृति या पुराण-मिश्रोक्त। तन्त्रोक्त क्रम के दो प्रधान मन्त्र हैं—**१ एकाक्षर वीज-मन्त्र** और **२ अष्टाक्षर मन्त्र-राज** या **विद्या-राज्ञी**। पुराणोक्त मन्त्र है **नवार्ण**, जो श्रौत मन्त्र भी है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तन्त्र-शास्त्र में श्रुति, स्मृति, दर्शन आदि सभी सन्निहित हैं। अर्थात् सभी शास्त्रों के सार तन्त्रों में कट-छँट कर भरे पड़े हैं।

(१) भगवती दुर्गा का **एकाक्षर वीज-मन्त्र** है— **'दुँ'** या **'दूँ'।**

विश्वसार तन्त्र में मन्त्रोद्धार है—**'थान्त-वीजं** ('थ' के बाद का वर्ण अर्थात् 'द') **समुद्धृत्य वाम-कर्ण-विभूषितं'** (वाम-कर्ण = ऊ) इत्यादि।

वरदा तन्त्र में—**'दँ दुर्गा-वाचकं** (प्राण-शक्ति-वाचक) **देवि! ऊकारो रक्षणार्थः'** इत्यादि।

रुद्र-यामल तन्त्र के अनुसार **'दुँ'** (दँ + ह्रस्व उकार) बीज है।

(२) श्रुति के अनुसार **एकाक्षर-वीज-मन्त्र** है—**'ह्रीं'**। इसका उद्धार कैवल्योपनिषत् में दिया है—

वियदीकार-संयुक्तं, वीति-होत्र-समन्वितं। अर्द्धेन्दु-लसितं देव्या-वीजं सर्वार्थ-साधकम्॥

वियत् (आकाश)= 'ह' + ई + वीति-होत्र (अग्नि)—'र' + अर्धेन्दु—अर्ध मकार= '**ह्रीं**'।

(३) 'हिन्दी तन्त्र-सार', पृष्ठ ११६ पर **अष्टाक्षर-मन्त्र** का उद्धार यह दिया है—

मायाद्रि-कर्ण-विन्द्वाढ्यो; भूयोऽसौ सर्गवान् भवेत्।
पञ्चान्तकः प्रतिष्ठावान्, मारुतो भौतिकासनः।
तारादि हृदयान्तोऽयं, मन्त्रो वस्वक्षरात्मकः।।

अर्थात् माया= **ह्रीं**, अद्रि (द) + कर्ण (उ) + बिन्दु (ँ)= **दुँ**, पुनः यही कर्ण विसर्ग-युक्त (दुः) + पञ्चान्तक (ग) + प्रतिष्ठा (आ) + मारुत (य) + भौतिक (ऐ) = **दुर्गायै**। इनके आदि में तार **(ॐ)** और अन्त में हृदय **(नमः)** लगाने से वसु (आठ) अक्षर का मन्त्र बनता है—'**ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः।**'

(४) मन्त्र-महोदधि में '**नवार्ण मन्त्र**' का उद्धार यह दिया है—

वाङ्-माया-मदनो दीर्घा, लक्ष्मीस्तन्द्री श्रुतीन्दु-युक्।
डायै सदृग्-जलं कूर्म-द्वयं झिण्टीश-संयुतम्।।

अर्थात् वाक् = **ऐं**, माया = **ह्रीं**, मदनः = **क्लीं**, दीर्घा लक्ष्मीः = **चा** + श्रुति एवं इन्दु-सहित तन्द्री= **मुं** + **डायै**, स-दृक् जल= **वि** + झिण्टीश-सहित दो कूर्म= **च्चे**।

पूरा मन्त्र= '**ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।**'

यह '**नवार्ण मन्त्र**' तन्त्र, श्रुति तथा स्मृति—तीनों से प्रतिपादित पूर्ण स्वरूप का द्योतक मन्त्र है। 'सप्तशती' द्वारा भी इसी विशिष्ट मन्त्र का उद्घाटन होता है। इस मन्त्र की उपासना वैष्णव, शैव और शाक्त (समयाचारी और कुलाचारी दोनों) आदि सभी लोग अपने-अपने क्रम के अनुसार करते हैं।

(५) '**नवार्ण मन्त्र**' का त्र्यक्षर रूपान्तर है—'**ऐं क्लीं ह्रीं**', जो श्रीबाला-मन्त्र **(ऐं क्लीं सौः)** का पर्यायवाचक है।

'**मन्त्र-विद्या**' मूलतः **ब्रह्म-विद्या** है, जिसे गुप्त रखा गया है क्योंकि **ब्रह्म-विद्यात्मक मन्त्र** की उपासना में असावधानी करनेवाले का अनिष्ट होता है। मन्त्रार्थ भी अनेक प्रकार के होते हैं। सद्-गुरु शिष्य की योग्यता के अनुसार ही अर्थ का ज्ञान कराते हैं। साधक व शिष्य की साधन-प्रगति के अनुसार मन्त्रार्थ बदलता रहता है। इसी से यह गुरु-गम्य कहा गया है। यहाँ **भगवती दुर्गा** के सामान्य मन्त्रार्थ का संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है—

(१) '**दुँ**' से '**प्राण**'-**शक्ति** का बोध होता है, जो समष्टि-रूपिणी और व्यष्टि-रूपिणी दोनों है। इस वीज के पर्याप्त आवृत्ति-अभ्यास से अर्थात् जप की पर्याप्त मात्रा से '**प्राण**'-**शक्ति** चैतन्य होती है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव '**मूलाधार**' में स्पन्दन होने

से होता है। '**दुँ**' वीज में 'द + उ + म्' ढाई अक्षर हैं। इससे नाद-विन्दु-निसृत 'द' अर्थात् 'दुर्गा + उ' अर्थात् **शिव का ज्ञान** होता है। यह **पर-विन्दु** अर्थात् **निराकारा शक्ति के प्रकाश-शक्ति** और **शिव** अर्थात् रक्त और शुक्ल विन्दु-द्वय का परिचय करानेवाला वीज है।

(२) '**दूँ**' से **प्राण-महा-शक्ति** की पुष्टि, सम्वर्धन-क्रिया सम्पादित होती है। इसका स्पन्दन '**हृदय**' में होता है। '**दूँ**' में 'द + ऊ + म्' ढाई अक्षर हैं। इस वीज का भी अर्थ '**दुँ**'-वीज के समान है। '**उ**' और '**ऊ**' दोनों से **शिव** का बोध होता है।

(३) '**ह्रीँ**' से प्रपञ्चेश्वरी **विश्व-रूपिणी त्रिपुर-सुन्दरी** की पर्याय-वाचक देवता का बोध होता है। यह भोग और मोक्ष-दायक मन्त्र है। पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् इसका स्पन्दन '**आज्ञा**'-**चक्र** या '**भ्रू**'-**मध्य** में होता है। इससे **अभेद-वृत्ति** और **भेद-वृत्ति** का ज्ञान होता है। '**मोक्ष**' की आकांक्षा करनेवालों के लिए यह '**अभेद-वृत्ति**'-द्योतक और **सकाम उपासकों** के हेतु '**भेद-वृत्ति**'-द्योतक है।

'**ह्रीं**' को '**देवी-प्रणव**' कहते हैं। यह **काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी** आदि अनेक महा-विद्याओं का और अन्य देवताओं यथा **बटुक भैरव** आदि का भी वीज-मन्त्र अर्थात् सूक्ष्म शाब्दिक स्वरूप है।

इस वीज में सन्निहित वर्ण हैं—'**ह + र + ई + म्**'। इन वर्णों के तात्पर्यों से ही वीज के पूर्ण तात्पर्य का पता मिलता है।

(१) '**ह**'-**कार**—प्राण-वीज है, जिससे सृष्टि-क्रिया होती है। इसकी छः ऊर्मियाँ हैं— १ बुभुक्षा, २ पिपासा, ३ मोह, ४ मद, ५ जरा और ६ मृत्यु।

(२) '**रेफ**' वा 'र'-कार अग्नि वा तैजस वीज है। इसी से दीप्त होकर प्राण या चेतना गतिशील होती है। इसके चार गुण हैं—'**रेफोत्था गुणाश्चत्वार एव च**'।

(३) '**ई**'-**कार** षट्-गुण का द्योतक है। इन गुणों के नाम हैं—१ मन, २ बुद्धि, ३ अहङ्कार, ४ चित्त, ५ सङ्घात और ६ चेतना।

(४) **अर्ध** '**म**'-**कार** वा **नाद-बिन्दु** से घनीभूता परा-शक्ति के विकास वा संसृति का बोध होता है।

परा घनीभूता विन्दु-रूपिणी **अव्यक्ता मूला प्राण** व **चिति महा-शक्ति** है। इसकी '**नाद**'-रूपी संसृति है। यही संसृति '**ह**'-**कार** या **चञ्चला, मध्यावस्था प्राण-शक्ति** हो जाती है, जिसकी तैजस् शक्ति रेफ '**र**'-**कार** है। यह **वीज-महा-शक्ति—प्रणव की महा-शक्ति** के सदृश है। इन दोनों में कोई भेद नहीं है। सृष्टि-क्रम से या अनुलोम-क्रम से यह **प्रपञ्च-कारिका** या **भोग-दायिनी शक्ति** है और संहार-क्रम या विलोम-क्रम से यह **लय-कारिका** या **मोक्ष-दायिका शक्ति** है।

अथवा '**ह्रीं**' से पर-विन्दु से निसृत '**नाद**'-**शक्ति** और उससे निसृत '**शिव**' एवं **तैजस प्राण-शक्ति** का बोध होता है—'**ह**'—**शिव** + र + 'ई'—**प्रकृति** (**ओजम्**)।

पुन: '**ह**' से **परमात्मज जीव** (**हंस**) के, और '**र**' से रक्त या **रजो-गुण** के अर्थ से इस वीज से नाद-विन्दु से निसृत **रजो-गुण-मय परमात्मा** और **जीवात्मा** दोनों का बोध होता है।

अष्टाक्षरी विद्या (मन्त्र)—'**ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नम:**'—का अर्थ यह है कि **निर्गुणा** और **सगुणा** अर्थात् **चिदचिदात्मक ब्रह्म-स्वरूप दुर्गा में एकता है** अर्थात् **परमात्मा और जीवात्मा में अभेद है।**

इसी प्रकार पूर्वोक्त बीज-द्वय और इस व्यापक **देवी-प्रणव** से तथा **नवार्ण मन्त्र** से अनेक तात्पर्यों का बोध होता है।

(४) नवार्ण मन्त्र '**ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**' का अर्थ है कि **वाक्-शक्ति**, **अर्थ-शक्ति** और **काम-शक्ति** रखनेवाली **चामुण्डा** अर्थात् **भोग** एवं **मोक्ष-दायिनी परमा शक्ति** या **धर्म-शक्ति-शालिनी परमा धर्मी-शक्ति** से मैं तादात्म्य-भाव स्थापित करता हूँ। 'वीज'-त्रय से **सत्**, **चित्** और **आनन्द** का बोध होता है।

'**नवार्ण मन्त्र**' को कोई-कोई '**नवार्णव**'-**मन्त्र** भी कहते हैं। **नव** + **अर्णव** अर्थात् **नौ समुद्र**। इस मन्त्र में **नौ अक्षर** हैं, तथा **प्रत्येक अक्षर एक समुद्र** है। यथा—

१. '**ऐं-कार**'—**ॐकार** की भाँति '**ऐं**' ढाई अक्षर का वीज है—अ + ई + ँ = **ऐं**।' जैसे '**अ**' को गति मिलने से '**उ**' बनता है, वैसे ही उसके प्रसारित होने से '**इ**'-कार बनता है। इस प्रकार '**अ**'-**कार** पर मन द्वारा दबाव डालकर उसे जबर्दस्ती खींचने से '**ऐ**' बनता है। '**प्रणव**' से मात्र क्रिया बताई गई है। उसमें दर्शन नहीं है। मन को दर्शन में लगाने से उसमें सङ्घर्षण पैदा होता है। इसी प्रकार **अ-कार** को दर्शनात्मक बनाकर दबाव डालने से '**ऐ**' बनेगा। '**प्रणव**' की क्रिया शून्य में है। '**प्रणव**' का दर्शन लक्ष्य से वाणी में स्थूल उपयोग करने पर '**ऐ**' बनता है। अतएव '**ऐं**'—**वाग्-बीज** यानी **वाणी का वीज** है। '**ॐ**' की भाँति '**ऐं**' में भी तीनों क्रियाएँ समाई हुई हैं। '**अ-कार**'—उत्पत्ति बताता है, अ-कार में धारणा उत्पन्न होकर वह खींचा जाएगा—तब '**इ**'-**कार** बनेगा, जो स्थिति बताता है और **बिन्दु** लय बताता है।

वाग्-वीज का चिद्-भाव प्रसरण-युक्त है। इसलिए क्रिया प्रसरण में मिल जाती है। **ॐ-कार** में गति है और '**अ**' को गति मिलने पर '**उ**' बनता है। प्रकृति में गति है, प्रसरण नहीं। इसलिए प्रकृति में '**उ**'-**कार** मिलेगा, '**ए**'-**कार** नहीं मिल सकता। '**प्रणव**' और '**वाग्-वीज**' में यही एक अन्तर है। '**ऐं**' याने—**विज्ञान-युक्त वाणी, जिससे अस्तित्व उठकर उन्नत होता है।** **वाग्-वीज** = **वाक्-शक्ति**, जो **विश्व-ज्ञान** प्राप्त करने का एक-मात्र साधन है। क्रोध-रूपी सागर को **वाग्-बीज** ही पार करा सकता है।

२. '**ह्रीं**'—माया-बीज है। यह अत्यन्त विचित्र वीज है। तुलसीदास जी ने कहा है—'**मैं**

अरु मोर तोर तैं माया।' अर्थात् '**मैं, मेरा, तेरा**'—यही '**माया**' है। '**माया**'= **ममत्व, मोह।** ममत्व के कारण मन का सुखेच्छा में फँसना ही '**मोह**' है। माया-रूपी सागर को '**माया**'-**बीज** ही पार करा सकता है। इस बीज के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

३. '**क्लीं**' अर्थात् **काम-बीज—नवार्ण** का तीसरा अक्षर है। '**काम**' अत्यन्त ही भयङ्कर समुद्र है। '**काम**' व्यक्ति को अवनत कर सकता है, किन्तु इसका सदुपयोग किया जाय, तो इससे व्यक्ति उत्तमोत्तम मार्ग प्राप्त कर सकता है, इसलिए **भगवती** '**श्री**' की अनन्त शक्ति कामेश्वरी है।

काम-बीज '**क्लीं**'—क, ल, ई तथा म् से बना है। '**क**'—'कामना'-भाव बताता है। '**ल**'-**कार**—भू-बीज है, '**इ**'-**कार**—शक्ति-बीज है और '**बिन्दु**'—लय-भाव बताता है। '**क**'-**कार** बाहर से ढँका हुआ है, उसमें स्वर, विसर्ग या बिन्दु के भाव जाग्रत् नहीं होते, किन्तु वह ज्योतिर्मय है। देखने का प्रयत्न करने पर इसमें आच्छादित प्रकाश दिखलाई पड़ेगा। यह चैतन्य चित् है तथा इससे दूसरे पदार्थों के भोगने की लालसा होती है। जब '**क**' में '**ल**' मिल कर माया में वासना-युक्त चित् '**ई**' शक्ति-सहित प्रस्फुटित होता है, तब सब प्रकार की वासनाएँ जागती हैं। कामना न करते हुए भी सारे विश्व की सम्पूर्ण कामनाएँ जिसमें लय होती हैं, वही पूर्ण-काम है। प्रत्येक कामना उसके सम्मुख होती है, मानो कहती है, 'मुझे स्वीकार करो।' ऐसा व्यक्ति कुछ भी कामना नहीं करता। सम्पूर्ण कामनाएँ स्थूल भाव और शक्ति-सहित उसमें लय होती हैं।

४. '**चा**'—चकार '**लोभ**'-रूपी चौथा सागर है। '**अतृप्ति**' का नाम ही '**लोभ**' है। इससे मनुष्य एक दूसरे का गला काटने को तैयार हो जाता है। लोभ-वश संग्रहण करने की प्रवृत्ति से स्वार्थ इतना अधिक बढ़ जाता है कि व्यक्ति किसी भी प्रकार का अन्याय करने में सङ्कोच नहीं करता। अतएव अगर लोभ को बाह्य रूप से न बढ़ने देकर मात्र आन्तरिक रूप से मन को सशक्त बनाने में लगाए, तो जितनी अधिक शक्ति सञ्चित होगी, व्यक्ति उतना ही उन्नत होगा तथा मन उतना ही प्रस्फुटित होगा।

५. '**मु**'—'**मद**'-रूपी सागर है। '**म**'-**कार**—'**रैं**'-बीज है। इसलिए द्रव-पूजन के अवसर पर '**रैं**'-बीज कहा जाता है। '**म**'—अमृत-बीज है तथा द्रव का अमृतीकरण करने के लिए इसका ध्यान करना पड़ता है। द्रव लेने से प्रारम्भ में उन्माद तथा अन्त में मूर्छा आती है। इन दोनों में मन की निरोध-वृत्ति निष्क्रिय हो जाती है तथा इसकी निष्क्रियता से मन अन्य किसी भी वृत्ति के वश में हो सकता है, किन्तु अगर मन को किसी आनन्द-मय एकाग्रता में स्थिर किया जाए, तो मन का बुद्धि से एकाकार होगा तथा बुद्धि से मिलाप होने के कारण मन अन्य विषयों की ओर आकर्षित न होकर बुद्धि में, जिसका आत्मा से सम्बन्ध है, मग्न हो जाएगा।

६. '**डा**'—'**मत्सर**'-रूपी छठे समुद्र को पार कराता है। '**ड**'—जड़ता-बोधक अक्षर है। जड़त्व से व्यक्ति में मत्सर बढ़ता है, जो व्यक्ति को पतित करता है। व्यक्ति में जितना ही ज्ञान

बढ़ता है, उतनी ही शङ्का बढ़ती जाती है, जिससे उसमें श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती। जड़त्व से भरा हुआ मूर्ख चरवाहा 'भेड़ी भेड़ पाती खा' को गुरु का दिया मन्त्र समझ कर उसका श्रद्धा-पूर्वक जप कर गुड़ से चीनी बन गया। इसी प्रकार वाल्मीकि भी अपने जड़त्व के कारण 'मरा-मरा' जपकर महान् व्यक्ति बन गए। इसीलिए अगर मूर्ख में भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाए, तो उसकी राह में अधिक आपत्तियाँ नहीं आतीं। श्रद्धा के कारण एकाग्रता हो जाने से व्यक्ति ध्येय पर पहुँच जाता है।

७. **'यै'**—**'वायु'** तथा **वाग्-बीज** के संयोग से बना है। इसका विकार **'द्वेष'** है अर्थात् यह 'द्वेष'-रूपी सागर पार कराता है। **'वाक्'** से वायु बढ़ती है। व्यक्तियों के वाद-विवाद में जो जीतेगा, उससे दूसरा द्वेष करेगा। उदाहरणार्थ दो समान व्यक्ति अगर एक ही नौकरी के लिए प्रयत्न करते हों, तो जिस एक को नौकरी नहीं मिली, वह दूसरे से द्वेष करेगा। द्वेष से अन्तरङ्ग मित्र शत्रु हो जाते हैं तथा एक दूसरे के कर्म से कलुषित होकर दोनों का पतन होता है। किन्तु द्वेष न कर अगर वह व्यक्ति दूसरे को बधाई दे, तो दूसरा कोशिश कर उसे भी नौकरी दिलाने का प्रयत्न करेगा। अतएव द्वेष से व्यक्ति का पतन होता है तथा द्वेष न करने से व्यक्ति उन्नत होता है।

८. **'वि'**—**'ईर्ष्या'**-रूपी समुद्र पार करानेवाला बीज है। **'व'-कार** सदैव शक्ति-युक्त रहता है। **'व'-कार**—जल-बीज है। जल-बीज शक्ति-युक्त हो, तो बड़े-बड़े जहाज डूब जायँ, किन्तु अगर तूफान न आए, तो वर्षा न हो। अतएव तूफान क्षय-कारक होते हुए भी जीवन-प्रद है, कारण वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है।

९. **'च्चे'**—यह नवम सागर है। इसका सम्बन्ध उपर्युक्त आठों सागरों से है। जिस प्रकार आठ कड़ियाँ एक में रखने के लिए फन्दे में फँसाई जाती हैं, उसी प्रकार 'मन्त्र'-रूपी अष्टाक्षरों को शृङ्खला-बद्ध रखने के लिए द्वित्व से भरे हुए **'च्चे'** अक्षर-रूपी फन्दे से दोनों तरफ उन्हें जकड़ा गया है।

❋❋❋

नवार्ण मन्त्र

नवार्ण मन्त्र **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'** का अर्थ है कि **वाक्-शक्ति, अर्थ-शक्ति** और **काम-शक्ति** रखनेवाली **चामुण्डा** अर्थात् **भोग** एवं **मोक्ष-दायिनी परमा शक्ति** या **धर्म-शक्ति-शालिनी परमा धर्मी-शक्ति** से मैं तादात्म्य-भाव स्थापित करता हूँ। 'वीज'-त्रय से **सत्, चित्** और **आनन्द** का बोध होता है। **'नवार्ण मन्त्र'** को कोई-कोई **'नवार्णव'-मन्त्र** भी कहते हैं। **नव + अर्णव** अर्थात् **नौ समुद्र**। इस मन्त्र में **नौ अक्षर** हैं, तथा **प्रत्येक अक्षर एक समुद्र** है।

श्रीदुर्गा-यन्त्र-तत्त्व

'**यन्त्र-सङ्केत**' अर्थात् '**यन्त्र**' **का ज्ञान** मोक्ष-दायक है, क्योंकि '**यन्त्र**'—आवरण का द्योतक है। इसके ज्ञान से आवरण का भेदन होता है, जिससे साधक '**विन्दु**' तक पहुँचता है अर्थात् **विन्दु का ज्ञान** होता है। यह ज्ञान **संहार-क्रम** की पूजा से प्राप्त होता है। **सृष्टि-क्रम** के अनुसार अन्तिम और **संहार-क्रम** के अनुसार प्रथम आवरण '**भू-पुर**' का भेदन करते हुए **दलों, वृत्तियों** और **त्रिकोणों** का भेदन कर '**विन्दु**' तक जाकर '**विन्दु**'-**स्थित कूटस्था शक्ति** का ज्ञान साधक प्राप्त करता है। यही **आवरण-पूजा** का रहस्यार्थ है। देखिए, **पूजा-रहस्य** (मूल्य ४०-००)।

'**यन्त्र**' की पर्यायवाचक संज्ञा '**चक्र**' है, जो अनेकार्थ-वाचक है। '**चक्र**'—चक् धातु से बना है (चक्र + र क्) जिसका प्रयोग शत्रु अर्थात् विजातीय पदार्थ के ताड़न में भी होता है। इस प्रकार यह '**दुर्गा**' का बोधक है, जिसमें '**विन्दु**'-**रूपिणी** या '**विन्दु**'-**मध्यावस्थिता दुर्गा महा-शक्ति** रहती है।

स्थूल दृष्टि से '**चक्र**' या '**यन्त्र**' को **भगवती दुर्गा का निवास-स्थान** कह सकते हैं।

फिर इसी '**चक्र**'-पद को, यदि '**कृ**'-धातु से बना मानें, तो अर्थ होता है काम करने का उपकरण अर्थात् जिससे कोई कार्य सम्पादित हो। यहाँ पूर्वार्थ ही लगता है।

मन्त्र के सदृश '**चक्र**' या '**यन्त्र**' असंख्य हैं। '**ध्यान**' अर्थात् रूप-कल्पना के सदृश अपनी-अपनी सूझ या दृष्टि-कोण के अनुसार ही '**यन्त्रों**' या '**चक्रों**' की संख्या असीम है। वस्तुतः सनातन आर्य धर्म में एक **साध्य के साधन-स्वरूप नाम, रूप, मन्त्र, यन्त्र, मार्ग** आदि सब ही अगणित हैं। साधक अपनी **मनो-वृत्ति** और **अधिकार** के अनुसार किसी भी रूप की उपासना कर सकता है, परन्तु उपासना-सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु का रहस्यार्थ समझ कर।

भगवती दुर्गा के असंख्य **पूजन-यन्त्रों** में सर्व-प्रधान यन्त्र का उद्धार '**रुद्र-यामल**' के अनुसार यह है—

विन्दु-त्रिकोणं रस-कोण-बिम्बं, वृत्ताष्ट-पत्राञ्चित-वह्नि-वृत्तम्।
धरा-गृहोद्-भासितमिन्दु-चूडे, दुर्गाश्रयं यन्त्रमिदं प्रदिष्टम्॥

अर्थात् १ मध्य में '**विन्दु**', २ फिर एक '**त्रि-कोण**', उसके बाहर ३ '**अष्ट-दलान्वित वृत्त**' से वेष्टित, ४ एक '**षट्-कोण**' और ५ सबके बाहर एक '**भू-पुर**'।

(१) विन्दु—यह घनीभूता, अचिन्त्या, अवर्णनीया, अदृष्टा आदि-लक्षणोपेता निराकारा महा-शक्ति का द्योतक सङ्केत है। जिस प्रकार वह **महतो महीयान** अर्थात् बड़े-से-बड़ी अर्थात् सबसे बड़ी है, उसी प्रकार **अणोरणीयान्** अर्थात् अणु का भी अणु अर्थात् छोटे-से-छोटी, जिसकी धारणा

नहीं हो सकती, भी है। बड़े-से-बड़ी से यहाँ तात्पर्य है, शक्ति-शाली होने से, न कि परिमाण में। कारण परिमाण में तो **'विन्दु'**—शून्य-रूपी है। वास्तव में **'विन्दु'—प्राण-शक्ति का परिचायक** है, जिससे किसी भी पदार्थ का अस्तित्व है। साथ ही जो सर्व-व्यापी है। इसे वैज्ञानिक शब्दों में **'सर्गाणु'** अर्थात् सृजन या संसृति का मूलाणु कह सकते हैं। **'नित्या हृदय'** के अनुसार **'वैन्दव चक्र'** की गति अप्रतिम, अप्रमेय और अचिन्त्य है। **'योग-वासिष्ठ'** के शब्दों में **'विन्दु'** मध्य-स्थित विलक्षण रूप वह है, जिसका ज्ञान प्रज्ञावानों को भी नहीं है। यही **विकासात्मिका आदि-शक्ति** है, जिससे क्रमशः कर्षाणु, परमाणु, विद्युत् कण (ऐलेक्ट्रोन) आदि बन कर दृश्यमान भौतिक जगत् की सृष्टि हुई है। यह द्वि-अणुक (दो अणुवाला) होकर भी अलक्ष्य है। इसमें जब स्फुरत्ता होती है, तो यह सर्व-प्रथम एक रेखा हो द्वि-अणुक हो जाता है। फिर **'त्रसरेणु'** अर्थात् तीन विन्दु-रूप होकर एक **त्रिकोणाकृति** का होता है। इसी को **'त्रिकोण'** कहते हैं।

(२) त्रिकोण—यह **'विन्दु'** का प्रथम रूप है, जो लक्ष्य में आ सकता है। अपरिच्छिन्नावस्था में **'विन्दु'** अचिन्त्य था। अब वही परिच्छिन्न रूप में चिन्त्य है। इसकी तीनों भुजाएँ **सत्त्व-गुणादि-त्रय** गुणोपेत हैं। तात्पर्य है कि एक-एक भुजा एक-एक गुण-रूपा है। यह **'त्रिकोण'—त्रि-भुवन** अर्थात् **ज्ञातृ, ज्ञान, ज्ञेय** वा **प्रमातृ, प्रमाण, प्रमेय** का द्योतक भी है। फिर **त्रि-प्रकाश** अर्थात् **सूर्य, चन्द्र, अग्नि**-रूप वृत्त-त्रय-प्रकाश-रूप का भी बोध इससे होता है।

वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से **'विन्दु'** ही स्वेच्छा से लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई-युक्त सावयव और परिमित **'त्रिकोण'**—स्वरूप बनता है। यही प्रथम विकास है। अव्यक्ता प्रकृति व्यक्त होने चली है। **'त्रिकोण'** की तीनों भुजाएँ क्रमशः **इच्छा, ज्ञान** और **क्रिया**—इन तीन शक्तियों की द्योतक हैं। द्वि-अणुक स्वरूप में केवल **इच्छा** और **ज्ञान** शक्ति-द्वय रूप होने से जो अलक्षित थी, वह **क्रिया-शक्ति**-द्योतक तीसरे विन्दु के संयोग से अर्थात् त्रसरेणु तक प्रसारित होने पर लक्षितावस्था में आ गई है।

(३) षट्-कोण—त्रि-गुणात्मिका महा-शक्ति-रूपी **'त्रि-कोण'** अपने को षट्-गुण-द्योतक **'षट्-कोण'** से वेष्टित करता है।

पर-ज्योति-रूपी **'विन्दु'** के त्रिगुणात्मक होने से किरणें प्रसारित होती हैं, जिससे ब्रह्म ईश्वर-रूप में आता है। **'ईश्वर'**—षट्-गुणोपेत या षडैश्वर्य्य-युक्त होता है। **'ईश्वर'** के ये छः गुण हैं—**१ ऐश्वर्य, २ धर्म, ३ यश, ४ श्री, ५ ज्ञान** और **६ विज्ञान**। अन्य मत से—**१ ऐश्वर्य, २ वीर्य, ३ यश, ४ सौभाग्य, ५ ज्ञान** और **६ वैराग्य**—ये ही छः प्रकार के 'भग' या **'ऐश्वर्य'** हैं। ये छहों कोई द्रव्य नहीं हैं, **प्रकाश-शक्ति द्योतक 'विन्दु' की प्रतिभाएँ** हैं, अतः वे **'बिम्ब'** कहे गए हैं।

(४) अष्ट-दलान्वित वह्नि-वृत्त—षट्-गुणात्मक ईश्वरी सत्ता को **'विन्दु'**-रूपी **परमा सत्ता** अपनी आवरण-शक्ति अर्थात् माया द्वारा वेष्टन कर प्रपञ्च करती है। इसी को अर्थात् आवृत्त करनेवाली को **'वृत्ति' = वृत्त** कहते हैं। 'विन्दु'-रूपी मन से **समष्टि मन** का तात्पर्य है, व्यष्टि मन का नहीं। प्राण-शक्ति अपनी स्पन्दन-शक्ति से आठ प्रकार की चाल से वृत्ति बनाती है, अपने को

वृत्ताकार में परिणत करती है। इस '**वृत्त**' की अष्ट-वृत्तियाँ **अष्टधा प्रकृति की आठ वृत्तियाँ** हैं, जो दृश्यमान प्रपञ्च है।

'**वृत्त**' से अनेक तात्पर्यों का ज्ञान होता है। इससे '**माया**' अर्थात् परिच्छिन्न करनेवाली आवरण-शक्ति का; '**संसृति**' अर्थात् पूर्ण-रूपिणी के अनेक पूर्ण रूपों में परिणत होने का, '**काल-शक्ति**' के नृत्य का भाव व्यक्त होता है। संक्षेप में यह **चित्-ज्योति का प्रसार** है। इसी कारण यह ज्योति-वाचक '**वह्नि**' के विशेषण से युक्त है।

'**अष्ट-दल**'—वृत्त के आठ '**दल**' या '**पत्र**' हैं। विकास-क्रिया में वक्रता अर्थात् मोड़-माड़ होती है। ये पत्र इन्हीं के द्योतक हैं। '**पत्र**' का शब्दार्थ भी ऐसा ही है—'**पत् + ष्टन्**'। पत्र का अर्थ है—**चलन, साधन**। इसी से इनका अर्थ है—रथ, घोड़ा, ऊँट इत्यादि। पक्षी के डैने (पंखों) को भी पत्र कहते हैं। जिस प्रकार हम रथ, घोड़े, ऊँट आदि पर बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र और सुगमता से जा आ सकते हैं, पक्षी अपने पक्षों के सहारे उड़ सकते हैं, उसी प्रकार **अव्यक्ता प्रकृति** अपने **आठ पत्रों** अर्थात् **१ अहङ्कार, २ बुद्धि, ३ मन, ४ आकाश, ५ वायु, ६ अग्नि, ७ जल** और **८ पृथ्वी** के द्वारा अपने आपको व्यक्त करती है। इन्हीं को '**सूक्ष्म आठ पुरियाँ**' (सूक्ष्म-पुर्य्यष्टक) श्रुतियों में और तन्त्रों में कहा है। समष्टि-भाव में ये '**अष्ट-दल**'—**१ प्रकृति, २ महत्तत्त्व, ३ अहङ्कार, ४ पञ्च-तन्मात्रा-गण, ५ पञ्च-भूत, ६ दश इन्द्रिय, ७ अन्तःकरण** और **८ पुरुष** के द्योतक हैं। व्यष्टि-भाव में **१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मात्सर्य्य, ७ पुण्य** और **८ पाप** का इससे बोध होता है। इन पत्रों की अधिष्ठात्री देवताओं—ब्राह्मी आदि की भावना भी ऐसी ही है। देखिए, '**भावनोपनिषत्**'।

५ भू-पुर—सूक्ष्म महा-प्राण-शक्ति **अष्टधा प्रकृति—रूप** में दसों दिशाओं में **दश-प्राण-सम्पन्ना सृष्टि** करती है। इन **दस प्राण-शक्तियों** को क्रमशः—**१ प्राण, २ अपान, ३ व्यान, ४ उदान, ५ समान, ६ नाग, ७ कूर्म, ८ कृकर, ९ देवदत्त** और **१० धनञ्जय** कहते हैं। इन्हीं शक्तियों के साधन से **अणिमादि दस सिद्धियाँ** मिलती हैं। व्यष्टि-भाव में प्रथम पञ्च-वायु जठराग्नि के **१ रेचक, २ पाचक, ३ शोषक, ४ दाहक** और **५ प्लावक** पाँच रूप हैं तथा अन्तिम पाँच नागादि पञ्च-प्राण—**१ क्षारक, २ उद्गारक, ३ क्षोभकर, ४ जृम्भक** और **५ मोहक** रूपों में अवस्थित हैं। ये दशों **प्राण वह्नि की दश कलाओं** के द्योतक हैं।

श्रीदुर्गा भगवती के '**यन्त्र**' या '**चक्र**' का संक्षेप में यही सङ्केत (भावार्थ) है। यह **समष्ट्यात्मक चक्र** सभी जीवों के शरीर में है, जिस प्रकार अन्य **महा-शक्तियों (महा-विद्याओं)** के चक्र का भी अस्तित्व पिण्डाण्ड (जीव-शरीर) में उन-उन **विशेष शक्ति** या **महा-विद्या** के उपासक अपने-अपने क्रम से मानते हैं। सारांश यह है कि सभी '**श्री-चक्र**' एक ही प्राण-शक्ति तत्त्व के परिचायक हैं। इसका ज्ञान प्रत्येक साधक के लिए आवश्यक है।

❋ ❋ ❋

श्रीदुर्गा-आराधना-तत्त्व

भगवान् राम ने **भगवती दुर्गा की आराधना** की थी। **'राम-कथा'** से **'श्रीदुर्गा-आराधना-तत्त्व'** भली-भाँति स्पष्ट होता है। अतएव यहाँ इस सन्दर्भ में **'राम-कथा' का सारांश** प्रस्तुत है। यथा—

भगवान् राम ने **भगवती दुर्गा**—प्राण महा-शक्ति की आराधना करके ही **'रावण'** आदि राक्षसों का वध किया था। वास्तव में **देव, दानव, यक्ष, किन्नर, प्रेत** आदि के स्थूल शरीर नहीं होते। ये आसुरी भावों के रूप में मनुष्यादि जीव-शरीर में रहकर आत्म-भाव को नष्ट करने का सतत प्रयत्न करते हैं और इन्द्रिय-सुख—वाह्य भोगों में ही तत्पर रहते हैं। इसी उद्देश्य से ये देह-रूपी **'लङ्का'** में अवस्थित हैं।

'लङ्का'-शब्द का, जो **'लकि'**-धातु से बना है और सुख पाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, अर्थ है—सम्वेदन (यहाँ सुख-सम्वेदन) स्थान अर्थात् देह। इसी देव-रूप पुरी में महा-मोह या मूर्तिमान् अहङ्कार-स्वरूप दश-मस्तक **'रावण'** रहता है। दशों इन्द्रियाँ ही महा-मोह या अहन्ता (अपराहन्ता) के दश मस्तक-स्वरूप हैं। उक्त अहन्ता-रूप **रावण**, इन्द्रिय-गण की वृत्तियों-रूप परिवार-गण सहित, मन्द-भावों के भाण्डार-स्वरूप **'मन्दोदरी'** (मन्दो भावो यस्या उदरे अस्ति सा) नाम की सह-धर्मिणी से युक्त इसी जीव-देह में अवस्थित है। वर्तमान जीव-देह ही **राक्षस-पुरी** है, ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं है। कारण **पाश-बद्ध जीव** और **राक्षस-भाव की प्रवृत्ति** में पार्थक्य नहीं है। इस प्रकार **जीव-भाव** ही **राक्षस-भाव** है। अन्य राक्षसों का अस्तित्व कवि की कल्पना मात्र है।

स्थिर प्राण-शक्ति से सम्पन्न **आत्मा-राम** स्व-विस्मृति भाव में जीव-देह में रहता है। **'राम'**-शब्द से रमण करनेवाले का बोध होता है। इस पद से **संसार के विषयों में रमण करनेवाले** और **आत्मा में रमण करनेवाले**—दोनों का ज्ञान होता है। ये दोनों लक्षण जीव के हैं। तात्पर्य यह कि **'रमा'** के सङ्ग रमण करनेवाले ही **'राम'** हैं अर्थात् **चञ्चला प्राण-शक्ति** ही **राम-रूपा प्रकृति** है और **स्थिर प्राण-रूप** ही ईश्वर या पुरुष **आत्मा-राम** हैं। यही **ईश्वर (राम)** सब भूतों के अन्दर आत्म-विस्मृति भाव में समान-भाव से रहते हैं। जिस प्रकार सुन्दर शरीर-विशिष्ट **'सुरथ'** ने **प्राण-शक्ति-रूपा महा-माया दश-भुजा दुर्गा** की आराधना से आसुर भावों को जीत कर **'मनु'** अर्थात् पूर्ण ज्ञानी होने में सफलता पाई थी, उसी प्रकार **श्री 'रामचन्द्र'** ने भी तद्रूप भाव में साधन-समर-द्वारा निज-देह-स्थित आसुरी सर्गों को जीतकर **आत्म-शक्ति-स्वरूपा 'सीता'** को पुनः प्राप्त किया था।

रामचन्द्र ने **धनुर्भङ्ग** कर **'गुरु'-रूपी जनक** से **'विद्या'** या **'ज्ञान'-रूपिणी 'सीता' (आत्म-विद्या)** को पाया था। **धनुर्भङ्ग** से **क्रिया-योग** का बोध होता है, जो **प्राण-योग** या **प्राण-याग** का एक अङ्ग है। यह **ग्रन्थि-भेद योग-क्रिया** की पर्यायवाचक **भङ्ग-क्रिया** या **त्रिभङ्ग-**

क्रिया-योग है। संक्षेप में इसका रूप है—**मूलाधार-भङ्ग** या **ब्रह्म-ग्रन्थि-भेद, अनाहत भङ्ग** या **विष्णु-ग्रन्थि-भेद** और **आज्ञा-भङ्ग** या **रुद्र-ग्रन्थि-भेद**। यहाँ शास्त्रों में मत-भेद है। एक मत है कि **विशुद्ध चक्र-भेद** होने से **रुद्र-ग्रन्थि-भेद** होता है और दूसरा मत पूर्वोक्त है। **श्रीकृष्ण भगवान्** की **त्रिभङ्गी छवि** इसी भाव के आधार पर कही गई है। क्यों न हो? आप **योगेश्वर** जो थे। **गुरु नानक** का भी वचन है—'**तीनों बन्ध लगाय के, सुनो अनाहत टङ्को। 'नानक' शून्य समाधि में, ना है भोर ना है सन्ध्या।**' तात्पर्य यह है कि इन्हीं **त्रिभङ्ग-स्थानों में आसुर भावों का नाश** होता है। **दुर्गा भगवती** के एक ध्यान में इसी भाव की परिचायक उक्ति है—'**त्रिभङ्ग-संस्थानां महिषासुर-मर्दिनीम्**' (प्राण-तोषिणी तन्त्र)।

विदेह जनक ने भी '**क्षेत्र**' का कर्षण कर '**विद्या**' को पाया था, कवियों ने आलङ्कारिक शब्दों में कहा है कि दुर्भिक्ष होने पर **राजर्षि जनक** ने शस्य-क्षेत्र को हल से जोतते समय '**सीता**'-नाम की कन्या को पाया था। कवियों की इस प्रकार की कल्पनाओं और पुराण-कर्ताओं के रूपच्छलात्मक कथानकों की अपनी सार्थकता है। इस प्रकार के लेखों से अधमाधिकारी व्यक्तियों को, जिनके निमित्त ये लिखे गए हैं, प्राथमिक ज्ञान मिलता है और भगवत्-अनुरक्ति उनमें बढ़ती है। शास्त्रों में स्पष्ट कहा है कि पुराण और इतिहासादि ग्रन्थ स्त्री और शूद्रों के लिए उपयोगी हैं। इस '**क्षेत्र**' (खेत) के सम्बन्ध में कहा है कि वर्तमान जीव-शरीर (ज्ञान की प्ररोह-भूमि) ही यथार्थ '**क्षेत्र**' है। इसके तत्त्व-वेत्ता को '**क्षेत्रज्ञ**' कहते हैं—''**इदं शरीरं कौन्तेय! क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद् यो वेत्ति, तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः**'' १३।१। गीतोक्ति से ज्ञात होता है कि जीव के वर्तमान शरीरस्थ **स्थिर प्राण-रूप महा-पुरुष** अर्थात् **छिन्न-पाश जीव** अर्थात् **शिव** ही एक-मात्र '**क्षेत्रज्ञ**' पद से वाच्य है—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि, सर्व - क्षेत्रेषु भारत!
क्षेत्र - क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं, यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ —'गीता', १३।२

यह **शिव—अपर शिव** अर्थात् **जीवन्मुक्तात्मा** है। यही '**जनक**' थे! यह पद प्राण के द्वारा जीव-शरीर रूप क्षेत्र कर्षित करने से **ज्ञान की प्राप्ति** से मिलता है। यही यथार्थ कृषि-कर्म है, जो क्रियोपयोग के अन्तर्गत केवल **गुरूपदेश** से समझ में आता है। यह **पौस्तिकी ज्ञान** से भिन्न **यथार्थ विशेष ज्ञान** है। अथवा ऐसा कहना अत्युक्ति न होगा कि पौस्तिकी ज्ञान विडम्बना मात्र है। कार्य-साधन करानेवाली एकमात्र **गुरु-वाक्** है—'**मुक्तिदा गुरुवागेका, विद्या सर्वा विडम्बना**' (कुलार्णव)। अस्तु, '**जनक**'-रूपी गुरु ने इसी प्रकार की शरीर-कर्षण-रूप प्राणायामादि क्रिया-द्वारा विद्या-रूपिणी '**सीता**'-नाम्नी कन्या **आत्म-विद्या** का, जिससे **आत्म-शक्ति की प्राप्ति** होती है, लाभ किया था। इसी कृषि-कार्य को लक्ष्य में रखकर वङ्ग-देशीय सिद्ध **साधक-वर रामप्रसाद सेन** ने कविता लिखी है—'**मन तुमि कृषि-कार्य जानी नो**' इत्यादि।

वस्तुतः जीवन्मुक्त '**जनक**' ने **स्थूल रूप से क्षेत्र-कर्षण** कर कन्या-लाभ नहीं किया था।

रामचन्द्र ने भी **स्थूल धनुष** नहीं तोड़ा था। इनका धनुष को तीन टुकड़ों में तोड़ना रहस्य-भाव से यह जताता है कि इन्होंने **गुरु-परम्परा-क्रम** से **जनक-रूपी गुरु** से **त्रि-भङ्ग-विद्या** प्राप्त कर **सीता-रूपी आत्म-विद्या** लाभ की थी। इसी भाव की समर्थक यह शास्त्रोक्ति है—

अथ मे कृषतः क्षेत्रं, लाङ्गलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा, नाम्नी सीतेति विश्रुता॥

तत्पश्चात् **राम की वनवासावस्था** में अर्थात् काल-वश **आत्माकार-वृत्ति-मण्डल** से हट जाने पर **राम** के शरीरस्थ **महा-मोह-रूप** यद्वा **अहङ्कार-रूप आसुर-सर्गापन्न रावण** द्वारा इनकी **आत्म-शक्ति-रूपिणी सीता** हर ली गई अर्थात् यह **आत्म-शक्ति—आवृता** या **आच्छन्ना** हो गई। कथानकों में लिखा है कि **चौदह वर्षों का वनवास** हुआ। तात्पर्य यह कि **चौदहों आवरणों** में **'वृत्र् आवरणे—स उणादि'** विचरण वा रमने का आदेश मिला अर्थात् वैसी चित्त-वृत्ति उत्पन्न हुई। यह कुवृत्ति **'दशरथ'** अर्थात् दशों दिशाओं में जानेवाले अर्थात् मन की **'भौतिक'** नाम की तीसरी शक्ति (**कौशल्या** और **सुमित्रा** क्रमशः **'पर-शक्ति'** और **'सूक्ष्म शक्ति'** की द्योतिका हैं) **'कैकेयी'** की प्रेरणा से उत्पन्न हुई। इस पर **राम** आत्म-विस्मृत हो **स्व-शरीर-रूप वन में आत्मानुसन्धान** करने लगे। अनुसन्धान करते-करते **राम—ऋष्यमूक** अर्थात् **आज्ञा-चक्र (भ्रू-मध्य)** पर गए। यहाँ पर प्रधान दश प्राणों में प्रथम **रुद्र-रूपी पवन-तनय हनुमान** से इनका साक्षात्कार हुआ। इसके बाद अपर प्रधान प्राण-रूपी **वायु-गण** से साक्षात्कार हुआ।

दशों प्राण-वायु **'ऋष्यमूक'** पर्वत पर इन्द्रिय-गण के अधिपति **इन्द्र**-रूपी वर्तमान मन के पुत्र **'बालि'** अर्थात् कुपित वायु के डर से प्रच्छन्न भाव से (लुक-छिप कर) रहते थे। इसी कुपित वायु-रूपी **'बालि'** को दशों प्राणों के उद्धार के हेतु, जिससे इनकी अपनी-अपनी क्रिया अबाधित रूप से हो सके, जीवात्मा-रूपी **'राम'** ने कौशल से अर्थात् **प्राणायाम-योग-रूप** कौशल से मार डाला अर्थात् कुपित वायु को साम्यावस्था में ले आए। कथानकों में रूपक-स्थल में लिखा है कि **सुग्रीव** के गले में माला पहना कर उसे **बालि** से युद्ध करने को भेजा गया था। यह भी रहस्यार्थ से खाली नहीं है। **'सुग्रीव'** से श्वसन-वायु का बोध होता है। इस श्वसन-वायु के **सदा-शिव के आलय** अर्थात् कण्ठ-देश में **अजपा माला** (माला से दीप्ति का बोध होता है) दी गई थी। यह स्वतः सिद्ध है कि बिना **अजपा जप-माला-साधन** के श्वसन वायु बलिष्ठ नहीं होता।

कथानक में यह भी लिखा है कि **राम की शक्ति** की जाँच पूर्व ही **सप्त-दल-भेद** से कर ली गई थी। अर्थात् **राम** ने **सातों तालों** अर्थात् **सातों दुर्गासनों** को एक ही शर से विद्ध किया था। **सप्त-दुर्ग** अर्थात् **शरीर के सातों आसनों** से—१ **भूः (मूलाधार)**, २ **भुवः (स्वाधिष्ठान)**, ३ **स्वः (मणिपुर)**, ४ **महः (अनाहत)**, ५ **जनः (विशुद्ध)**, ६ **तपः (आज्ञा)** और ७ **सत्यं (सहस्रार)**—इन **सातों चक्रों** का बोध होता है। इन **सातों चक्र-रूपी तालों का भेदन एक ही शर** अर्थात् **एक ही प्राण-शक्ति की आरोहण-क्रिया** से जो नहीं कर सकता, वह कुपित **महा-बलिष्ठ**

'बालि' को नहीं मार सकता। तात्पर्य यह कि जो **सहस्त्रार** में **अजपा-जप-रूप गायत्री दुर्गा** के आवास-स्थल में **अजपा-जप-रूप काल की स्थिति** अर्थात् **श्वास-काल की अवस्थिति** नहीं कर सकता है अर्थात् पर्याप्त काल-स्थित प्राण-शक्ति को स्थिर नहीं कर सकता, वह कुपित वायु को नष्ट नहीं कर सकता।

अब जब कुपित वायु (**बालि**) नष्ट हो गया, तब दशों प्राणों में से प्रधान श्वसन-वायु रूपी **'सुग्रीव'—शिव** हो गया अर्थात् **छिन्न-पाश** हो गया। **'सुग्रीव'**-शब्द का अर्थ है—सुन्दर कन्धरवाला। कन्धर से क्रिया-योग प्रकरण में वायु धरनेवाला अर्थात् **प्राणों का आयमन करनेवाला** (श्वास-क्रिया को बन्द करनेवाला) **'कं वायुं धरतीति कन्धरः'**, ज्ञान-योग-प्रकरण में **ब्रह्म** या **ब्रह्म-भाव** के धारण करनेवाले कारण **'क'** से **ब्रह्मा** का भी बोध होता है। (अनिर्वचनीय ब्रह्म को श्रुतियाँ **'कं ब्रह्म'** कहती हैं।)

रामचन्द्र ने इन्हीं **दशों प्राण-रूपी** और **असंख्य वायु-रूपी अप्रधान बन्दर** और **भालू** की सहायता से खोई हुई **सीता-रूपिणी आत्म-शक्ति** का पुनरुद्धार किया था। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि वायु तो ४९ ही हैं, असंख्य किस प्रकार हुए? वायु असंख्य नहीं हैं वरन् ४९ ही हैं, परन्तु शरीर में धमनियाँ असंख्य हैं, जिनमें से प्रत्येक धमनी में वायु नाना भाव से नाना रूप से प्रवेश कर नाना रूप का कार्य करते हैं। अतएव क्रिया-गुण-वशतः वायु को असंख्य कहा है। इनकी सहायता से और सब **आसुरी सर्ग** तो नष्ट हो गए। अब बचा केवल **'रावण'** अर्थात् **द्वैत-भावापन्न 'अहन्ता-भाव'।** इस **'रावण'** को **रामचन्द्र—'प्राण-महा-शक्ति'** या **'महा-चिति-स्वरूपा' दुर्गा की आराधना** अर्थात् **सम्वर्द्धिनी क्रिया** कर इसको प्रसन्न कर (प्रकर्ष-रूपेण सन्ना) अर्थात् पूर्ण रूप से प्राण-शक्ति को स्थिर कर 'प्राणायाम'-द्वारा ही मार सके थे। यह तो हुई **क्रिया** वा **कर्म-योग** की बात। **'ज्ञान-योग'** में प्राणायाम से तात्पर्य है—**पूर्ण तादात्म्य**। तात्पर्य यह कि **अद्वैत-भाव** के स्थिरत्व से ही **द्वैत-भाव का नाश** होता है।

'रावण'—मरा नहीं है। **असंख्य रावण**—हम सब में विद्यमान हैं। मनन करनेवाले ऐसा अवश्य ही जानते हैं और जान सकेंगे। तभी तो राधेश्याम ने कहा है—

मुनि बोले जग को अभी मिला नहीं विश्राम। अभी हुआ ही है कहाँ, रावण का वध राम॥

माया का सागर चहुँ दिश है, उसमें शरीर यह लङ्का है।
अभिमान का रावण बैठा है, जो बजा रहा निज डङ्का है।
है स्वार्थ का इसमें मेघनाद, आलस है कुम्भकर्ण भगवन्।
वध करो कृपा-शर से इनका, तब हो भू-भार-हरण भगवन्॥

अस्तु! हम सब में विद्यमान **असंख्य रावण** को **'श्रीदुर्गा-आराधना'** के द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है। **'श्रीदुर्गा' की आराधना** का यही मुख्य लक्ष्य है।

❋❋❋

अष्ट-भुजा दुर्गा

रजि० ३२९८१/५७

प्रकाशक : श्रीऋतशील शर्मा, श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-६ ☎ ०५३२-२५०२७८३